रेणु के रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज : एक मूल्यांकन

(एम०फिल० की उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक :
प्रो० केदारनाथ सिंह

शोध-छात्रा :
नूतन कुमारी

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
1989

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भाषा संस्थान
भारतीय भाषा केन्द्र

नया महरौली मार्ग
नई दिल्ली - 110067

दिनांक - 2.5.89

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि नूतन कुमारी द्वारा प्रस्तुत "रेणु के रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज : एक मूल्यांकन" शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है।

यह लघु शोध-प्रबन्ध नूतन कुमारी की मौलिक कृति है।

अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

डॉ॰ केदार नाथ सिंह
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विषय सूची

भूमिका ..... क - घ

प्रथम अध्याय ..... 1 - 27

1. हिन्दी में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज : विकास की रेखाएं
2. रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज : हिन्दी के प्रमुख लेखक और उनका योगदान
3. रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज : "रेणु" के प्रयोग और विकास क्रम

द्वितीय अध्याय ..... 28 - 54

"रेणु" की प्रमुख कृतियाँ और उनका विश्लेषण

1. मैला आंचल : जीवन संघर्ष की गाथा
2. नेपाली क्रान्ति-कथा : जन संघर्षों का इतिहास
3. श्रुत अश्रुत पूर्व : जहाँ-जहाँ मन टिका था
4. ऋण तुलसी की गन्ध : मन-मस्तिष्क पर छायी छवियाँ

तृतीय अध्याय ..... 55 - 70

"रेणु" की भाषा शैली

चतुर्थ अध्याय ..... 71 - 84

"रेणु" के रेखाचित्रों, संस्मरणों और रिपोर्ताजों में व्यक्त लेखक की जीवनदृष्टि और विचारधारा ।

परिशिष्ट ..... 85 - 87

भूमिका

फणीश्वरनाथ "रेणु" हिन्दी साहित्य में आँचलिक उपन्यासकार के रूप में चर्चित रहे हैं। उनके उपन्यास के विभिन्न पक्षों पर शोध भी होता रहा है। किन्तु उपन्यास के साथ-साथ "रेणु" ने रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज भी लिखा है, जो कतई उनके उपन्यासों से कम महत्व के नहीं हैं।

जब मैं इस विषय पर काम करने का निर्णय लिया, उन दिनों लगातार यह बहस का विषय रहा था कि रेखाचित्र, संस्मरण और विशेषांक से रिपोर्ताज को ललित साहित्य के अन्तर्गत रखा जाय अथवा नहीं। अनेक विद्वानों का यह मत था कि रिपोर्ताज आखिर रिपोर्ताज है वह कहानी और उपन्यास का स्थान नहीं ले सकती। जबकि, सत्य तो यह है कि सभी लेखक, एक तरह से वक्त की ही जरूरत को पूरा करते हैं - भले ही वे कहानी लेखक हों, निबन्ध लेखक हों या रिपोर्ताज लिखने वाला। इसी में रचनाओं की सार्थकता होती है।

जब भी साहित्य की कोई नयी विधा जन्म लेती है तो हमेशा से उसे साहित्य में स्वीकार करने पर अनेक प्रश्नचिह्न लगाये

जाते रहे हैं । जब "निराला" ने कविता को छन्दों से मुक्त किया था तब भी हिन्दी के आचार्य उनके खिलाफ खड़े थे । किन्तु कोई भी नई विधा साहित्यकार के दिमाग की उपज नहीं होती, बल्कि उस समय में समाज के जरुरत की माँग होती है । जो उस माँग को सबसे पहले पहचानता है वह उस ओर पहले प्रवृत्त होता है ।

रेखाचित्र संस्मरण और रिपोर्ताज का उदय और विकास 20वीं शती में आकर होता है । रेखाचित्र और रिपोर्ताज में संस्मरण अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है । हिन्दी मे पं· पद्मसिंह शर्मा की परम्परा में अनेकों रेखाचित्रकार हुए, किन्तु रिपोर्ताज लेखक गिने-चुने हैं ।

मुझे लगता है कि रिपोर्ताज आज के समय की सबसे सशक्त विधा है । आज हमारे पढ़े-लिखे समाज का बड़ा हिस्सा इतना संवेदनहीन हो गया है कि कहानी और उपन्यास की संवेदना को ग्रहण ही नहीं कर सकता । यह इतना चालाक हो गया है कि बेहतर से बेहतर निबन्ध और समालोचना के विरुद्ध कुतर्क जुटा लेता है । किन्तु रिपोर्ताज - रोज-रोज की घटनाओं को कैसे झुठला सकता है, उससे कैसे मुँह मोड़ सकता है ? आज के समाज में अगर साहित्य की किसी विधा को हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है तो वह है रेखाचित्र और रिपोर्ताज । किन्तु इन दोनो में भी रिपोर्ताज बेहतर है क्योंकि रेखाचित्र में एक व्यक्ति का चित्र होता है जबकि रिपोर्ताज में पूरे समाज का चित्र ।

अपने शोध प्रबन्ध में मैंने इन्हीं कारणों से आँचलिक उपन्यासकार "रेणु" के रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज के मूल्यांकन का प्रयास किया है ।

किसी भी साहित्यकार का मूल्यांकन विकास के क्रम में ही किया जा सकता है इसी कारण अपने "पहले अध्याय" में मैंने हिन्दी में रेखाचित्र संस्मरण और रिपोर्ताज के विकास को रेखांकित करने का प्रयास किया है। तत्पश्चात इन विधाओं में हिन्दी के प्रमुख लेखकों और उनके योगदान की चर्चा की है। अन्त में इन विधाओं में रेणु के प्रयोग और विकास क्रम को काल-क्रम के अनुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अपने "द्वितीय अध्याय" में मैंने अब तक के प्रकाशित रेणु के रेखाचित्रों, संस्मरणों और रिपोर्ताजों के संग्रहों का अलग-अलग विवेचन-विश्लेषण किया है। इनमें जिन पुस्तकों को मैंने आधार बनाया है वे हैं - "श्रणजल धनजल" जिसका प्रकाशन 1977 में हुआ था; "नेपाली क्रान्ति-कथा" जिसका प्रकाशन 1977 में हुआ; "बन तुलसी की गंध" जिसका प्रकाशन 1984 में हुआ; और "श्रुत-अश्रुत पूर्व" जिसका प्रकाशन भी 1984 में हुआ।

भाषा और शैली का साहित्य में अपना महत्व होता है। किसी भी साहित्यिक कृति का सम्यक विवेचन-विश्लेषण हम भाषा और शैली को नज़रअंदाज करके नहीं कर सकते। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने तीसरे अध्याय में भाषा और शैली की दृष्टि से रेणु के रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज के वैशिष्ठ को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।

जिस प्रकार शास्त्र, काव्य नहीं है वरन् शास्त्र काव्य का अनुगामी है। किन्तु इसके वावजूद यह भी सच है कि शास्त्र के बिना

भी काव्य नहीं है । वैसा ही सम्बन्ध साहित्य में लेखक की जीवन-दृष्टि और विचारधारा का है । विचार से साहित्य नहीं बनता किन्तु लेखक की जीवन दृष्टि और विचारधारा ही साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित करती है । इसी कारण इसे ही आधार बनाकर मैंने अपने "चतुर्थ और अन्तिम अध्याय में "रेणु" साहित्य के मूल्यांकन का प्रयास किया है ।

इसके लिए मैं उन तमाम लोगों की आभारी हूँ जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग से इसके सम्भव होने में मेरी सहायता की । विशेषरूप से अपने निर्देशक डा॰ केदारनाथ सिंह को, जिन्होंने एम॰फिल॰ के शोध प्रबन्ध के लिए यह विषय सुझाया और इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया । मैं उन तमाम लेखकों की भी आभारी हूँ जिनके पुस्तकों से गुजर कर एक दृष्टिकोण विकसित कर पायी । अन्त में, मैं भारत यायावर के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने "रेणु" के रेखाचित्रों, संस्मरणों और रिपोर्ताजों को संकलित, सम्पादित कर, पुस्तकाकार रूप में उपलब्ध कराकर, मेरा कार्य अत्यन्त आसान कर दिया ।

— नूतन

प्रथम अध्याय

हिन्दी में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज : विकास की रेखाएँ

ललित गद्य के अन्तर्गत अनेक नवीन विधाओं का विकास हुआ है - कहानी, जीवनी, गद्यकाव्य, ललित निबन्ध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि । रेखाचित्र तथा रिपोर्ताज अपेक्षाकृत नवीन विधाएँ हैं जिनका विकास निबन्ध और कहानी के बाद हुआ है । आधुनिक जीवन की परिस्थिति एवं व्यस्तता ने साहित्यकारों को इस नवीन विधा या उसके स्वरूप को अपनाने की प्रेरणा दी है । जब परम्परागत विधाएँ कलाकार की भावनाओं को सफल अभिव्यक्ति नहीं कर पातीं तो नवीन विधाओं की खोज की जाती है । इसी के परिणामस्वरूप रेखाचित्र, एकांकी, रिपोर्ताज, डायरी आदि नवीन विधाओं का प्रयोग किया गया है ।

रेखाचित्र, कहानी और निबन्ध की मध्यवर्तिनी भूमि पर स्थित है । रेखाचित्र न पूरी तरह से कहानी है और न निबन्ध,

किन्तु इन दोनों के तत्वों का कुछ न कुछ समावेश उसमें अवश्य है। यही कारण है कि रेखाचित्र को जब तब निबंध की श्रेणी में रख दिया जाता है या उसकी गणना कहानियों में की जाती है।

रेखाचित्र कहानी की अपेक्षा एक ठोस और यथार्थ भूमि पर तैयार होता है। उसमें कल्पना का आश्रय कम लिया जाता है। लेखक उन व्यस्त क्षणों में रेखाचित्र का निर्माण करता है जब अपनी भावनाओं को अलंकृत रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके पास कोई अवकाश नहीं होता। यथार्थ परिस्थितियों से प्रभावित होकर लेखक अपने अनुभव को सीधे शब्दों में तीव्रता के साथ व्यक्त कर देना चाहता है। ऐसी विधाओं का जन्म संक्रान्तिकाल में होता है। यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के युग में इन विधाओं का विकास हुआ। इसी प्रकार भारत में बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक में आर्थिक उथल-पुथल के समय रेखाचित्र का आविर्भाव हुआ।

रेखाचित्रकार की सीमाएँ निश्चित हैं, उसे कम-से-कम शब्दों में सजीव रूपविधान प्रस्तुत करना पड़ता है। छोटे-से-छोटे वाक्य से अधिक से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भावव्यंजना करनी पड़ती है। अपने इस कार्य में वही कलाकार सफल होता है जिसका हृदय अधिक संवेदनशील और जिसकी दृष्टि सूक्ष्म पर्यवेक्षणनिपुण एवं मर्मभेदिनी होती है। रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा चित्रित मर्मस्पर्शी और भावमय रूपविधान है जिसमें लेखक अपना निजीपन भी समाहित कर देता है। रेखाचित्र के स्वरूप के विषय में यह स्पष्ट है कि रेखाचित्र किसी एक व्यक्ति स्थान, घटना, दृश्य या उपादान का ऐसा वस्तुगत वर्णन होता है जो संक्षेप में उसकी

बाह्य विशेषताओं को प्रस्तुत करता है । बाह्य विशेषताओं के भीतर ही उसकी आन्तरिक विशेषताओं का भी समाहार हो जाता है । रेखाचित्र सरल, सुगठित, लघु तथा वर्णन प्रधान होना चाहिए । उसमें थोड़े से शब्दों के द्वारा सजीव रूपविधान और सफल अभिव्यक्ति करने की आवश्यकता होती है ।

जैसा उल्लेख किया जा चुका है हिंदी में रेखाचित्रों का लेखन तीसरे दशक से ही प्रारम्भ हो गया था पर "रेखाचित्र" का शास्त्रीय विवेचन पहली बार व्यवस्थित रूप से मार्च 1941 में श्री शिवदान सिंह चौहान ने प्रस्तुत किया । निष्कर्ष रूप में श्री चौहान लिखते हैं, "किसी व्यक्ति के रेखाचित्र में यह विशेषता होगी कि उसके व्यक्तित्व ने जो विशेष मुद्राएँ, चेष्टाएँ शारीरिक अवयवों की बनावट में जो विकृतियाँ ऊपर को उभार दी हैं उनके आभास को चित्र में ज्यों का त्यों पकड़ा जाय ताकि लेखक की अनुभूति के साथ उसके व्यक्तित्व की रेखाएँ और भी सघन होकर दिखाई पड़ने लगे ।"

रेखाचित्र में संस्मरण, रिपोर्ताज, कहानी, निबन्ध आदि अन्य विधाओं के तत्व इस प्रकार मिले रहते हैं कि उसकी विशिष्ट प्रकृति को व्यक्त करना कठिन है । यही कारण है कि रेखाचित्र को पूर्व इतिहासकारों ने कभी निबन्ध के अन्तर्गत तो कभी कहानी के अन्तर्गत मान लिया है । रेखाचित्र और संस्मरण के बीच तो सीमा रेखा खींचना और भी कठिन है । सम्भवत: इन्हीं कारणों से रेखाचित्र को कथा, संस्मरण और जीवनी का समन्वित रूप मान लिया जाता है ।

संस्मरण : 20वीं शताब्दी में आकर हमारी समस्त विधाओं ने अपनी-अपनी दिशा और गति प्राप्त कर ली है, किन्तु उपन्यास, नाटक, कहानी अथवा कविता की तुलना में संस्मरण, आत्मकथा अथवा जीवनी साहित्य की स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं दिखाई पड़ती । लगता है कि हमारे साहित्य में ये विधाएँ यथोचित भाव से लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित नहीं हो पाई हैं । इन विधाओं को कुछ असाहित्यिक समझा जाता है और ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो इन्हें साहित्य की मूल्यवान् एवं सर्जनात्मक विधा मानने में कुछ संकोच का अनुभव करते हों ।

ये विधाएँ हमारे साहित्य में पश्चिम के प्रभाव से आईं । यह नहीं कि हमारे यहाँ प्राचीनकाल में जीवनी प्रधान अथवा आत्म-वृत्त निरूपक रचनाएँ होती ही नहीं थी । नाभादास कृत "भक्तमाल" (17वीं शताब्दी ई॰) प्रभृति कृतियाँ वस्तुतः जीवनी साहित्य के अन्तर्गत आएँगी । संस्कृत के प्राचीन महाकाव्यों, नाटकों अथवा पुराणसाहित्य में अनेक घटनाओं के संस्मरण तथा अनेक महापुरुषों के जीवनवृत्त सुरक्षित हैं । किन्तु उस कोटि के प्राचीन वाङ्मय में तथ्य के साथ कल्पना का, यथार्थ के साथ मिथ्या का और वस्तुस्थिति के साथ संस्तुति अथवा प्रशस्ति का ऐसा घालमेल कर दिया गया है कि उसके साथ जीवनी अथवा आत्मकथा अथवा संस्मरण के आधुनिक रूप की संगति बैठाना असंभव नहीं तो अस्वाभाविक प्रतीत होता है । आधुनिक काल के हमारे साहित्य में इन विधाओं का जो स्वरूप निर्धारित हुआ है, वह पश्चिमी साहित्य और उसकी यथार्थोन्मुख जीवनदृष्टि का परिणाम है ।

हमारे साहित्य में आधुनिक प्रकार के जीवन लेखन का शुभारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो-एक दशकों से माना जाता है। बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1893 में "मीराबाई का जीवन-चरित्र" लिखा था। सात-आठ वर्ष उपरान्त 1901 ई. में पं. अंबिकादत्त व्यास की "निज वृत्तांत" नामक रचना सामने आई जिसके प्रकाशन के साथ आत्म-कथा विषयक साहित्य का व्यवस्थित सूत्रपात हुआ। किन्तु कुल मिला कर ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आचार्यों और आलोचकों ने इन विधाओं को बहुत समय तक साहित्य के सर्जनात्मक रूप की मान्यता नहीं प्रदान की। आचार्य बाबू गुलाबराय ने पहली बार अपनी पुस्तक में इन विधाओं की सम्यक् विवेचना की। उनका "काव्य के रूप" नामक साहित्य समालोचना विषयक ग्रन्थ पहली बार 1947 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में इन विधाओं के शास्त्रीय निरूपण को यथोचित स्थान दिया गया है। सिद्धांत प्रधान आलोचना के परवर्ती प्रयत्नों को देखा जाय तो अब कोई ऐसी कृति विरले ही मिलेगी जिसमें इन आधुनिक गद्यविधाओं की उपेक्षा की गई हो। इन विधाओं के स्वरूपगत एवं विकासात्मक अध्ययन की दृष्टि से श्री शिवनंदन प्रसाद की "साहित्य के रूप और तत्व" (पटना 1954) एवं डॉ. दशरथ ओझा की "समीक्षा शास्त्र" (दिल्ली 1957) नामक कृतियाँ भी उल्लेख्य हैं।

इस काल में संस्मरण आदि विधाओं के स्वरूपनिर्धारण एवं साहित्यिक प्रतिष्ठापन की यथोचित चेष्टा की गयी। इस दृष्टि से यह कालखंड दुहरे महत्व का है इस अवधि में एक ओर तो इन साहित्य रूपों को रचना का निमित्त बनाकर कुछ अधिक मात्रा में साहित्यसृष्टि की गई और दूसरी ओर उसी अनुपात में उनकी समा-लोचना के मूल्यमान भी विकसित हुए। पाश्चात्य साहित्य में उनके

तत्व एवं स्वरूपादि की विशद चर्चा बहुत पहले हो हो चुकी थी । हमारे यहाँ इसका अभाव था । लेकिन, जब इन विधाओं के सर्जन का प्रसार हुआ तो अनुगता की भाँति आलोचना एवं मूल्यान्वेषण की परिपाटी भी चल निकली ।

संस्मरण गद्य साहित्य की एक आत्मनिष्ठ विधा है । आत्मनिष्ठ इस अर्थ में कि संस्मरण लेखक मन की निजी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की पीठिका पर सर्जन करता है । संस्मरण के अन्तर्गत बहुधा वैयक्तिक जीवन अथवा व्यक्तिगत संपर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी विशिष्ट क्षण, प्रहर अथवा कुछ अधिक विस्तृत कालखण्ड की स्मृतियों को अंकित किया जाता है । इसके मूल में अनेक प्रकार की प्रेरणाएँ कार्य कर सकती हैं किन्तु व्यक्तिगत जीवन अथवा विशिष्ट चरित्र के पक्ष विशेष को उजागर करना इसका मुख्य उद्देश्य माना गया है । संस्मरण लेखक कई अर्थों में इतिहास के लिए भी बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करता है । लेकिन संस्मरण लेखक इतिहासकार नहीं होता । संस्मरण, इतिहास की वस्तुपरक भंगिमा से बहुत दूर, साहित्य की भावानुभूतिपरक ललित विधा है । संस्मरण की लेखनशैली प्राय: निबंध अथवा ललित गद्य शैली के निकट होती है । कभी-कभी उसमें कहानी की शैली का भी पूरा आस्वाद आ जाता है । इसे जीवनी और आत्मकथा का मूलाधार समझना चाहिए । इसमें उन दोनों के प्राय: सभी तत्व सुरक्षित हैं । अंतर केवल इतना है कि संस्मरण जीवन के खंडरूप को लेकर चलता है जबकि उक्त विधाएँ सम्पूर्ण जीवन को अपना उपजीव्य बनाती हैं ।

रिपोर्ताज : - रिपोर्ताज हिन्दी गद्य की नवीन विधा है । फ्रान्सीसी भाषा के और बहुत से शब्दों में जो अंग्रेजी ही नहीं

यूरोप की और दूसरी भाषाओं में भी प्रचलित हो गए हैं यह एक शब्द रिपोर्ताज भी है । रिपोर्ताज रिपोर्ट का ही साहित्यिक रूप है लेकिन उसका अन्त:करण साहित्य की श्रेणी में आने से शुद्ध होता है ।

किसी घटना या घटनाओं का ऐसा वर्णन करना कि वस्तुगत सत्य पाठक के हृदय को प्रभावित कर सके, रिपोर्ताज कहलायेगा । कल्पना के सहारे रिपोर्ताज नहीं लिखी जा सकती । इसे लिखने की कला इस महायुद्ध में विशेष रूप से विकसित हुई है । साहित्य का यह सबसे लचीला रूप है जिस की सीमा एक पृष्ठ से लेकर कई सौ पृष्ठों की मोटी पुस्तक तक हो सकती है । वर्तमान पत्रकार कला से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है । पत्रों में जैसे लम्बे उपन्यास एक साथ नहीं छप सकते, वैसे ही उनमें बहुत लम्बे रिपोर्ताज भी नहीं छप सकते । इसकी सीमाएँ कहानी और निबन्ध से मिलती-जुलती है और इन दोनों से इसका भावात्मक सम्बन्ध है । रिपोर्ताज में जब तक एकाध छोटी कहानी न हो, वह काफी रोचक नहीं होता । परन्तु कहानी ज्यादातर एक ही घटना को लेकर चलती है और उसी को केन्द्र मानकर पात्रों का चरित्र अंकित किया जाता है । रिपोर्ताज में एक से अधिक घटनाएँ हो सकती हैं, लेखक का लक्ष्य उनके सम्मिलित प्रभाव की ओर रहता है । वह कहानीकार की तरह किसी "समस्या" को लेकर नहीं चलता, न कहानी की तरह अन्त में समस्या के विचित्र समाधान से पाठकों को आश्चर्य में डाल देना चाहता है । वह लेख के आरम्भ से ही छोटी-छोटी बातों की ओर यों ध्यान आकर्षित करता है कि इन सबसे मिलकर एक वृहत् चित्र बन सके । चरित्र-चित्रण के लिए कहानीकार के पास ही कम जगह होती है, रिपोर्ताज

लेखक के पास तो और भी कम । वह रेखाचित्रकार की तरह ब्रश के इशारे से चित्र को उभार कर आगे बढ़ चलता है उसे इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह अपने लेख को घटना-प्रधान बनाये या चरित्र-प्रधान, वह उसमें नाटकीयता का ज्यादा पुट दे या गीतात्मकता का । उसके लिए सबसे ज्यादा जरुरी बात यह है कि वह जिस बात पर कलम उठाये, उसे खुद अपनी आँखों और कानों से देख-सुन चुका हो । आँखों से देखने पर भी यदि केवल वस्तुगत सत्य का शुष्क वर्णन हुआ तो भी उसे रिपोर्ताज न कह सकेंगे । रिपोर्ताज-लेखक के लिए जरुरी है, कि वह आधा पत्रकार हो और आधा कलाकार हो । वह अपने चारों ओर के गतिशील जीवन की वास्तविक घटनाओं का इतिहासकार है ।

इस विधा का विकास यूरोप में युद्धक्षेत्र में हुआ । सन् 1936 के लगभग द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इस विधा का जन्म हुआ और यह विधा युद्धभूमि में विकसित हुई । महायुद्ध की विभीषिका भी नवीन कलाकारों को जन्म देती है । इलिया एहरेनबुर्ग के रिपोर्ताज के साथ अमरीका के डॉस पैसोस, फ्रांस के आन्द्रे मैलरोज और इंगलैंड के क्रिस्टोफर इथरवुड के नाम उल्लेखनीय हैं । डिकिंस की पहली पुस्तक "बोज के स्केच" में लंदन की शाम तथा सुबह के अच्छे चित्र हैं । ग्रौसमैन, लेवस्का, शोलेखोव आदि प्रमुख रिपोर्ताज लेखक हैं । रूस की समाजवादी क्रान्ति का रिपोर्ताज जॉन रीड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड" में लिखा है ।

"रिपोर्ताज" विधा पर सर्वप्रथम शास्त्रीय लेख मार्च 1941 में शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था । चौहान स्वयं अच्छे रिपोर्ताज

भी लिखते रहे हैं । आपकी राय में "आधुनिक जीवन की इस नई द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिये मनुष्य को नई साहित्यिक सुविधा को जन्म देना पड़ा । रिपोर्ताज उनमें से सबसे प्रभावशाली और महत्वपूर्ण सुविधान है ।

हिन्दी में रिपोर्ताज का प्रारम्भ करने का श्रेय "हंस" को है जिसमें "समाचार और विचार" शीर्षक से एक स्तम्भ की सृष्टि की गई । इस स्तम्भ में प्रस्तुत सामग्री रिपोर्ताज ही होती थी । बाद में चलकर जून 1944 के अंक से "अपना देश" शीर्षक से स्थायी स्तम्भ ही चला दिया गया । हंस के संपादक महोदय ने ही सर्वप्रथम "रिपोर्ताज" विधा का महत्व समझा था । "रिपोर्ताज साहित्य का अभिनव क्रान्तिकारी सुविधान है । रिपोर्ताज रिपोर्ट है जिसमें वर्ण्य घटना अपने परिवेश की सम्पूर्ण चित्रात्मकता के साथ अंकित की जाती है । इस लक्षण को सिद्धि के लिए जो श्रृंखला प्रस्तुत हुई उसकी पहली कड़ी रिपोर्ताज के रूप में थी "मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई ।" इसके लेखक थे शिवदान सिंह चौहान । "हंस" में प्रकाशित इस नौ पृष्ठीय रिपोर्ताज में स्वतंत्रता से पूर्व की देश की गतिविधि पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है । स्वतंत्रता की पुकार के साथ इसमें बंगाल का अकाल, गांधीजी की रिहाई, एमरो के भाषण की चर्चा भी है इस रिपोर्ताज के अन्त में लेखक इस निर्णय पर पहुँचता है कि अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण देश की आजादी की लड़ाई और जातीय आत्मनिर्णय के अधिकार की लड़ाई में कोई वैसम्य नहीं है ।

जिस समय हंस में चौहान यह रेखाचित्र लिख रहे थे उसी समय विशाल भारत के लिए "अदम्य जीवन" शीर्षक से रांगेय राघव

लिख रहे थे । इस दृष्टि से दोनों समकालीन हैं पर इस विधा की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने का श्रेय शिवदान सिंह चौहान को ही है क्योंकि आपके द्वारा प्रस्तुत "लक्ष्मीपुरा" शीर्षक रचना, जो "रूपाभ" दिसंबर 1938 में ही प्रकाशित हुई, एक प्रकार से "रिपोर्ताज" ही है । चौहान उन लेखकों में से हैं जो घटनास्थल पर रहकर उस घटना को जानने समझने की कोशिश करते हैं और समाज के प्रतीक क्रान्तिकारी संघर्ष से लेखकीय सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।

रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज : हिन्दी के प्रमुख लेखक और उनका योगदान

हिन्दी रेखाचित्र के विकास के क्रम में जो सबसे पहला नाम आता है वह है पं॰ पद्मसिंह शर्मा का । यद्यपि हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में शर्माजी का नाम तुलनात्मक पद्धति के लिए लिया जाता है, फिर भी स्वतंत्र निबन्ध लेखन में आपका महत्वपूर्ण स्थान है और इस क्षेत्र में आप अग्रणी है । आपके निबन्ध संकलन है - पद्म पराग, प्रबन्ध मंजरी ।

रेखाचित्र की दृष्टि से आपका "पद्म पराग" संग्रह उल्लेखनीय है जिसमें संस्मरणात्मक निबन्धों तथा रेखाचित्रों का संकलन है और कुछ विशेष निबन्ध हैं । संस्मरणात्मक निबन्धों तथा रेखाचित्रों के आप जनक कहे जा सकते हैं ।

इस विधा को प्रारम्भिक रूप देने में शर्माजी का योगदान महत्वपूर्ण है, आपसे ही प्रेरणा पाकर आगे चलकर पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदी, पं॰ श्रीराम शर्मा, पं॰ हरिशंकर शर्मा आदि लेखकों ने इस दिशा में लेखनी चलानी प्रारम्भ की ।

श्रीराम शर्मा हिन्दी साहित्य में शिकारसाहित्य के प्रख्यात लेखक के रूप में जाने जाते हैं । कहानी के साथ-साथ रेखा-चित्र लिखने की दृष्टि से भी आपकी कला में निरन्तर निखार आता गया ।

पं॰ श्रीराम शर्मा की तूलिका से रंग-बिरंगे शब्द-चित्र उस समय से लिखे जाने लगे जब इस विधा का कोई ज्ञान भी नहीं था, केवल इनके पूर्ववर्ती लेखकों की यत्र-तत्र वस्तुत: रेखाचित्र के नाम पर रेखाएँ मात्र ही थीं । वे इस विषय में स्व॰ पद्मसिंह शर्मा के असली उत्तराधिकारी हैं ।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के वरिष्ठतम साहित्यकार तथा पत्रकारों में से हैं । आपका साहित्यिक जीवन सन् 1912 से प्रारम्भ हुआ था । तब से अबाध गति से आपकी लेखनी साहित्य के भंडार को विभिन्न विधाओं के माध्यम से भरती रही । चतुर्वेदी जी प्रसिद्ध पत्रकार भी रहे हैं । अनेक आन्दोलनों के जन्मदाता, संस्थाओं के जन्मदाता, प्रवासी भारतीयों के हितैषी, शहीदों के प्रति श्रद्धालु श्री चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र, संस्मरण तथा जीवनी लेखक के रूप में विख्यात हैं । संस्मरण-रेखाचित्र लिखने में तो आप सिद्धहस्त हैं । रेखाचित्र, संस्मरण तथा जीवनी लिखने की कला में एक साथ प्रवीण होने के कारण डा॰ माचवे का कथन काफी दूर तक सत्य है कि

"उनके लेखन में एक वर्तीकार, एक जीवनीकार और आत्मचरित लेखक के एक साथ दर्शन होते हैं।" बनारसीदास जी निबन्ध लेखक से अधिक रेखाचित्रकार हैं।

शब्द-शिल्पी बेनीपुरी जी की शैली का चमत्कार उनकी सभी रचनाओं में देखा जा सकता है, विशेषत: रेखाचित्रों में। भाषा की सरलता तथा शैली में प्रवाह की दृष्टि से बेनीपुरी जी अग्रणी हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, क्रान्तिकारी, जागरूक साहित्यकार, कर्मनिष्ठ पत्रकार बेनीपुरी अपनी चित्रात्मक शैली में लेखनी से कैसा जादू चलाते हैं, संस्मरणात्मक शैली में भी कैसा शब्द-चित्र प्रस्तुत कर देते हैं यह उनके रेखाचित्रों में देखा जा सकता है।

रेखाचित्र को इतने साज-संवार के साथ गढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रखता। शैलियाँ बदलती रहती हैं, कहीं संस्मरणात्मकता कहीं नाटकीयता और कहीं डायरी, पर भाषा सर्वत्र सहज फुदकती चलती है जिसमें छोटे-छोटे भाव-भीने वाक्य पाठकों को मुग्ध किये रहते हैं। बेनीपुरीजी ने चतुर पारखी जौहरी की भाँति यत्र-तत्र जहाँ कहीं भी पात्र मिले उनमें अपनी कुशल लेखनी से पात्र का चित्र खड़ा कर दिया। विषय की जितनी विविधता और शैली का जितना अद्भुत चमत्कार बेनीपुरीजी में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। हिन्दी-साहित्य में रेखाचित्र को प्रतिष्ठित करने का श्रेय बेनीपुरी जी को ही जाता है।

छायावादी काव्य-धारा में रहस्यवादी कवयित्री महादेवी वर्मा का उल्लेखनीय स्थान है। आपने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए काव्य तथा गद्य दोनों ही माध्यमों को अपनाया

है । किन्तु आपने अपने रहस्यवाद को अपने गद्य में तोड़ा । उनके गीतिकाव्य में आत्मानुभूति की प्रधानता है और रेखाचित्रों में समाज को प्रधानता दी गई है ।

अब तक रेखाचित्र बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं तथा महापुरुषों के ही खींचे जाते थे, पर महादेवीजी ने समाज के निम्न वर्ग में से अपने पात्र लिये हैं जो उनकी लेखनी का आश्रय पाकर अमर हो गये हैं । इन रेखाचित्रों में उनके पात्र रामा, भक्तिन आदि कम बोलते हैं, लेखिका द्वारा किया गया पात्रों का रेखांकन अधिक मुखर है ।

आपके रेखाचित्रों में "स्मृतिचित्र" तथा "संस्मरण" दोनों समाहित हो जाते हैं । वस्तुत: आपने अधिकांशत: संस्मरणात्मक शैली में ही रेखाचित्र लिखे हैं जिनको बहुत से आलोचक भ्रमवश "संस्मरण" मात्र मान लेते हैं ।

लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्ज्वल है कि स्मृति में जो रेखाएँ मात्र थीं, कागज पर उतर कर उनसे करुणा और व्यंग्य-हास्य के छाया प्रकाश में हँसते-खेलते उच्चतम मानवीय तत्वों से अनुप्राणित स्पन्दनशील चित्र बन गये हैं ।

इस प्रकार रेखाचित्र-साहित्य में महादेवी जी का स्थान मूर्धन्य है । आपने अपनी लेखनी से जहाँ अपने जीवन में आने वाले छोटे-छोटे पात्रों का चित्रांकन किया है वहाँ सहयोगियों पर भी अच्छे रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं ।

इन प्रारम्भिक विशिष्ठ रेखाचित्रकारों के बाद हिन्दी रेखाचित्र साहित्य का उत्कर्ष काल आता है जिसमें इन रेखाचित्रकारों का महत्वपूर्ण योगदान है - कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर", प्रकाशचन्द्र गुप्त, निराला, सत्यजीवन वर्मा "भारतीय", राजा राधिकारमण सिंह, सत्यवती मल्लिक, वृन्दावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, इन्द्र विद्यावाचस्पति, विनोदशंकर व्यास, शिवचन्द्र नागर, शान्तिप्रिय, भावलंकार, गुलाबराय, श्री प्रकाश, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामनाथ सुमन, जैनेन्द्र, कामेश्वर शर्मा, वासुदेव शरण, अज्ञेय, जनार्दन झा द्विज, बलराज साहनी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, रायकृष्ण दास, कृष्णानन्द गुप्त, विनयमोहन शर्मा, गोविन्द दास, सियाराम शरण, देवेन्द्र सत्यार्थी, राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशलयायन, यशपाल, उदय शंकर भट्ट, अमृतलाल नागर, हजारी प्र· द्विवेदी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, उपेन्द्र नाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, पहाड़ी, अमृतराय, रामनारायण उपाध्याय, चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय, सुमित्रानन्दन पंत, रामधारी सिंह "दिनकर", ओंकार शरद, हर्षदेव मालवीय, लक्ष्मीचन्द्र जैन, महेन्द्र भटनागर, रामकुमार "भ्रमर", महावीर त्यागी, यशपाल जैन, प्रेम नारायण टण्डन, अविनाशचन्द्र, राजेन्द्र लाल हाँडा, माखन लाल चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त भट्ट, अक्षय कुमार जैन, बैकुंठ नाथ महरोत्रा, मुक्तिबोध, उग्र, ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ, हिमांशु जोशी, शमशेर सिंह नरुला, अनन्त गोपाल शेवड़े, राम गोपाल विजवर्गीय, मन्मथनाथ गुप्त, सूर्य नारायण ठाकुर, निरंजन नाथ आचार्य, मदन वात्स्यायन,

विष्णु अम्बालाल जोशी, भिक्खु, कृष्णा सोबती, गोपीकृष्ण गोपेश, विद्यानिवास मिश्र, राम प्रकाश कपूर, चन्द्रमौलि बख्शी, राज-विहारी लाल, भवानी दयाल संन्यासी, कमलेश, कुमार विमल, कमला रत्नम, रामचन्द्र तिवारी, हंसराज रहबर, कुलभूषण, शिवानी, रसिक बिहारी ओझा "निर्भीक", हवलदार त्रिपाठी सुहृदय, बी.पी. वैशम्पायन, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, मक्षिन्द्रनाथ, न. नागप्पा, कुन्दन लाल, कपिल अमरनाथ, तेजबहादुर चौधरी, प्रकाशकुमार रामखेलावन चौधरी, कुन्तल गोयल, शिवचन्द्र प्रताप, कृष्णा हठी सिंह, धर्मेन्द्र गुप्त आदि ।

अन्य रेखाचित्रकारो में किशोरी दास बाजपेयी, मनोरमा गोयल, हरिकृष्ण द्विवेदी, विश्वमोहन कुमार सिंह तथा फणीश्वर नाथ रेणु का नाम लिया जा सकता है ।

रेखाचित्रकारों की इस विशाल परम्परा को देखने से यह लगता है कि हिन्दी साहित्य में यह विधा बहुत ही लोकप्रिय हुई । हिन्दी साहित्य में रेखाचित्रों के अविर्भाव के बाद इसका तेजी से विकास हुआ और बहुत से लेखकों ने इस विधा में अपने सफल प्रयोग किए ।

संस्मरण : - संस्मरण साहित्य के विकास में जिन लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है । उनमें से कई एक लेखक तो, भाषाशैली की विशिष्ट भंगिमा अथवा आत्माभिव्यक्ति के विशिष्ट कौशल की दृष्टि से संस्मरण विधा के वास्तविक निर्माता सिद्ध हुए हैं । जैसे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व को लिया जा सकता है । आधुनिक पत्रकारिता के इतिहास

में चतुर्वेदी जी का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है । संस्मरण, रेखाचित्र एवं डायरी लेखन प्रभृति गद्य की आधुनिक ललित विधाओं के क्षेत्र में भी इनकी सेवाएँ मान्य ठहरती हैं । इनकी लेखन शैली बोलचाल की भाषा के निकट होने के कारण एक प्रकार के सहज सौंदर्य से अलंकृत है । अनुभव की प्रौढ़ता और अनुभूति की सघनता ने इनके संस्मरणों को मूल्यवान् एवं मार्मिक बना दिया है । चतुर्वेदी जी के समवयस्क श्रीराम शर्मा का कृतित्व शिकार विषयक साहसिक वृतान्त तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के संस्मरणों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । शिकार और जंगल के साहसिक वृतान्तों के रूप में शर्माजी की कृतियाँ हमारे साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति करती हैं । आपके द्वारा लिखे गए राष्ट्रीय आन्दोलन विषयक संस्मरणों में प्रत्यक्ष अनुभव और प्रगाढ़ अनुभूति का आकर्षण है । भाषाशैली की दृष्टि से आपकी कृतियाँ सहज और रोचक बन पड़ी हैं ।

संस्मरण साहित्य के सर्जन और विकास में बिहार के दो लब्ध प्रतिष्ठ लेखकों, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का योगदान महत्वपूर्ण माना गया है । राजाजी और बेनीपुरी जी अपनी-अपनी भावुकता प्रधान, काव्यात्मक लच्छेदार और मुहावरेदार भाषाशैली के लिए प्रसिद्ध हैं । राजाजी की "वे और हम" तथा "तब और अब" नामक गद्यकृतियाँ उनके आकर्षक संस्मरणशिल्प को भली भाँति उजागर करती हैं । बेनीपुरी जी की "माटी की मूरतें" नामक पुस्तक प्रसिद्ध हैं । दिन-प्रति दिन के पारिवारिक सामाजिक जीवन से सम्बद्ध सामान्य व्यक्तियों

के प्राणमय रेखांकन तथा भावात्मक संस्मरणलेखन की दृष्टि से उनकी यह रचना एक आदर्श मानी गयी है ।

शान्तिप्रिय द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" एवं रामनाथ सुमन अन्य प्रसिद्ध संस्मरणशिल्पी हैं । शान्तिप्रिय द्विवेदी छायावाद युग के श्रेष्ठ लेखक माने गए हैं । "पथचिन्ह" नामक इनकी संस्मरण प्रधान कृति इन्हें उच्चकोटि का शैलीकार सिद्ध करती है । कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" के संस्मरण लेखों में भाषा की सादगी और अनुभूतियों का सौन्दर्य पाया जाता है । सहज आत्मीयतापूर्ण साथ ही तटस्थ एवं अकृत्रिम भाषा शैली के कारण इनकी रचनाएँ मर्मस्पर्शी होती हैं । इनकी पुस्तक "दीप जले-शंख बजे" साधारण, सामान्य किन्तु मूल्यवान एवं मार्मिक चरित्रों के संस्मरण सुनाती हैं । "भूले हुए चेहरे" प्रभाकरजी की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है जिसमें उनकी भावपूर्ण संस्मरणशैली द्रष्टव्य है । सुमनजी ने महामना मालवीय, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, मौलना आजाद जैसे राजनैतिक महापुरुषों के संस्मरण लिखे हैं । रामनाथ सुमन की संस्मरणकला संबद्ध व्यक्तियों के सजीव रेखाचित्रांकन एवं उनके व्यक्तित्व के मूलपक्ष के उद्घाटन का संकल्प लेकर चली है और इस दिशा में सुमनजी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है । जैनेंद्र की "गांधी कुछ स्मृतियाँ" तथा जानकी वल्लभ शास्त्री की "स्मृति के वातायन" उल्लेखनीय कृतियाँ हैं ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, महाराज कुमार रघुवीर सिंह एवं अज्ञेय गद्य शैली और साहित्य के आधुनिक निर्माताओं में गिने जाते हैं । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उच्चकोटि के निबन्ध लेखक एवं शैलीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं ।

प्रगाढ़ पांडित्य, अबाधचिन्तन, सहज उदार हृदय, एवं मनमौजी स्वभाव के कारण इन्होंने हिन्दी की गद्यशैली को एक विशिष्ट भंगिमा प्रदान की है । इन्होंने अपने चारो ओर के सामाजिक परिवेश तथा अपनी सर्जनात्मक प्रेरणा के एक प्रमुख स्रोत "गुरुदेव" रवीन्द्रनाथ के अनेक संस्मरण लिखे हैं जो पांडित्य, संवेदनशीलता, सहज भाषा एवं समर्थ शैली के कारण अत्यन्त मनोहर बन पड़े हैं । रवीन्द्रनाथ विषयक संस्मरणों की इनकी एक पुस्तक है "मृत्युंजय रवींद्रनाथ" । महादेवी वर्मा आधुनिक छायावादी काव्य के चार समर्थ शिल्पियों में से एक हैं । समर्थ कवयित्री होने के साथ-साथ ये उच्चकोटि की गद्यलेखिका भी रही हैं । इनके गद्य पर इनके कवित्व की गहरी छाप है । अत्यंत परिमार्जित परिनिष्ठित भाषा, किंचित् संगीतपूर्ण सुमधुर पदविन्यास एवं अप्रस्तुतों तथा बिम्बों के योग से उत्पन्न की गई अलंकृति इनके शैलीशिल्प की प्रमुख विशेषताएँ हैं । इस दृष्टि से इनकी "अतीत के चलचित्र" तथा "स्मृति की रेखाएँ" नामक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं । इन कृतियों में सामान्य पात्रों के सजीव तथा मार्मिक संस्मरण प्रस्तुत किए गए हैं । "पथ के साथी" नामक परवर्ती कृति में महादेवीजी ने मैथिली-शरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सियाराम शरण गुप्त एवं सुभद्राकुमारी चौहान के संस्मरण लिखे हैं । महाराज कुमार रघुवीर सिंह तथ्य एवं कल्पना पर आश्रित अपने ऐतिहासिक संस्मरणों के लिए प्रसिद्ध हैं । इनकी शैली मुख्यत: गद्यकाव्यात्मक है जिसके सफल प्रयोग द्वारा इन्होंने मुगलकाल के विभव-पराभव के रोमांचक स्मृतियों को साकार किया है । अज्ञेय हिन्दीगद्य की नवीनतम शैली के सूत्रधार कहे जा सकते

है । भाषा की ताजगी, शब्दों के सार्थक प्रयोग, अभिव्यक्ति की परिपक्वता, थोड़े में कुछ अधिक कह देने की कलात्मक क्षमता आदि गुणों के कारण इनका गद्य बहुतों के लिए अनुकरणीय सिद्ध हुआ है । "अरे यायावर रहेगा याद" और "आत्मनेपद" इनकी प्रसिद्ध संस्मरणात्मक कृतियाँ हैं । सुप्रसिद्ध नाटककार सेठ गोविन्द दास ने भी संस्मरण लिखे हैं । इनकी "स्मृतिकण" नामक संग्रह उल्लेखनीय है । रायकृष्णदास का "जवाहर भाई" तथा गंगा प्रसाद पांडेय का "ये दृश्य : ये व्यक्ति" भी महत्वपूर्ण हैं । तनसुखराम की दो कृतियाँ "विस्मृति के भय से" तथा "जीवन के कुछ क्षणों में इस शैली में" लिखी गई हैं ।

संस्मरण साहित्य की अभिवृद्धि में इन लेखकों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । इसके साथ ही अनेक नए लेखकों का भी आविर्भाव हुआ है । नए लोगों में डा· प्रभाकर माचवे, डा· रघुवंश, डा· पद्मसिंह शर्मा "कमलेश", श्री विद्यानिवास मिश्र, डा· प्रेमशंकर, श्री सुधाकर पाण्डेय, डा· शिवप्रसाद सिंह, डा· रवींद्र भ्रमर एवं फणीश्वरनाथ "रेणु" आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

रिपोर्ताज : - "रिपोर्ताज विधा दूसरे महायुद्ध की ही देन है । द्वितीय महायुद्ध में जनता का सरकार के साथ सहयोग नहीं था अत: जिस तेजी से इस विधा का विकास भारतीय भाषाओं में होना चाहिए था उतना नहीं हुआ । आगे चलकर चीन और फिर पाकिस्तान के युद्ध के समय कुछ समय में ही यह विधा काफी विकसित हो गई ।

द्वितीय महायुद्ध के मध्य ही सन् 1943-44 में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा जिससे भयंकर तथा अप्रत्याशित स्थिति उत्पन्न हो गयी । अकाल के साथ महामारी भी फैल गयी, इस समय ही जनता को डाक्टरी सेवा अर्पित करने के लिए गए हुए जत्थे के साथ आगरा से उदीयमान साहित्यकार डा॰ रांगेय राघव भी लेखक रूप में साथ चले गए थे । उन्होंने इस अकाल के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए जिनमें आशा निराशा में झूलती, अदम्य उत्साह के साथ परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई जनता की भावनाओं का चित्रण है । उन्होंने वहाँ दुर्भिक्ष से आक्रांत मानवता की चीत्कार को सुना था, अपनी आँखों से उन आँखों को देखा था जो निरंतर निर्झर की भाँति बहने पर भी सूख गयीं थी । अकाल के साथ पनपी हुई पशुता के उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन किए थे ।

आपने घटनास्थल पर रहकर जो प्रत्यक्ष पैशाचिक लीला देखी उस पापलीला का ही रिपोर्ताज शैली में "विषाद मठ" शीर्षक से उपन्यास भी लिखा । आपने अकाल के इस भयंकरता के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए जो उस समय ही विशाल भारत तथा हंस में प्रकाशित हुए । बाद में यही "तूफानों के बीच" शीर्षक से संगृहीत हुए । अन्तर्मन को झकझोरने वाले ये रिपोर्ताज रांगेय राघव की लेखनी से घटनाओं का मार्मिक चित्र उपस्थित करने के साथ-साथ आग भी उगलते चलते हैं । इन रिपोर्ताजों की भाषा सरल तथा सहज है । ऐसी प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया गया है जो सरल तथा बोधगम्य है । कहीं-कहीं काव्यात्मकता है । शैली व्यंग्यात्मक अधिक है ।

अकाल सम्बन्धी रिपोर्ताज के अतिरिक्त इन्होंने अनेक रिपोर्ताज लिखे जो हंस में प्रकाशित हुए थे । इनमें से पहला उल्लेखनीय है "उपचेतना का तांडव" । इसमें अनेक चित्र - स्वतंत्रता का आंदोलन, मुन्नी की पढ़ाई, भिखारी का आगमन, प्रस्तुत है । पूरा रिपोर्ताज अभावग्रस्त अवचेतन मन का चित्र है जो पूर्णतया असंबद्ध होते हुए भी एक दूसरे से किसी न किसी प्रकार उलझा हुआ है । "यह ग्वालियर है" दूसरी प्रकार का रिपोर्ताज है जिसमें दमन एवं अत्याचार का सजीवचित्र है । इन रिपोर्ताजों में संघर्ष और दमन के प्रति साहसिक लेखनी ने आग उगली है । हिन्दी साहित्य में रांगेय राघव का नाम रिपोर्ताज शैली के लिए चिरस्मरणीय बना रहेगा ।

TH-2825

इस दिशा में तीसरे उल्लेखनीय लेखक हैं - प्रकाशचंद्र गुप्त । गुप्तजी ने घटना प्रधान रिपोर्ताज अधिक लिखे हैं जिनमें "बंगाल का अकाल" एवं "अल्मोड़े का बाजार" उल्लेखनीय है । गुप्तजी ने अपने रिपोर्ताजों को भी स्केचों के संग्रह में ही रख दिया है । ये घटना प्रधान रेखाचित्र वस्तुतः रिपोर्ताज हैं । घटनाओं का महत्व ही इनमें सर्वाधिक है । हंस में प्रकाशित "स्वराज्य भवन" उल्लेखनीय रिपोर्ताज है ।

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY

इस विधा के अन्य लेखकों में रामनारायण उपाध्याय ने "गरीब और अमीर पुस्तकें" में सर्वथा भिन्न शैली का प्रयोग किया है । भगवतशरण उपाध्याय ने भी हंस में अनेक रिपोर्ताज लिखे हैं । उपाध्यायजी के रिपोर्ताजों में पर्यटन एवं जीवन संघर्ष की छाप स्पष्ट है । आपका "खून के छींटे" शीर्षक रिपोर्ताज उल्लेखनीय

O,152,3,N21;g
DISS.
152M9

है । पर्यटकों में राहुलजी ने भी परिचयात्मक रिपोर्ताजों की सृष्टि की है ।

रामकुमार ने "यूरोप के स्केच" में चित्रात्मकता के साथ विवरण भी दिया है अतएव इन स्केचों में रेखाचित्र तथा रिपोर्ताज दोनों विधाओं का मिश्रण हो गया है । "कोपेनहेगन की विशाल झील", "नेपल्स का नीला आकाश" आदि शीर्षक इसके अन्तर्गत रखे जा सकते हैं क्योंकि इनमें चित्रात्मक विवरण है ।

जगदीशचन्द्र जैन ने "पैकिंग की डायरी" में रिपोर्ताज शैली में विवरण प्रस्तुत किए हैं । डायरी शैली में रिपोर्ताज लिखने में निष्णात हैं श्री अमृतलाल नागर । आपने "गदर के फूल" में अवध की क्रान्ति का वर्णन प्रस्तुत किया है । इसमें प्राचीन जनश्रुतियों, लोककथाओं, इतिहास तथा वीरगीतों का भी उपयोग किया गया है ।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के "कुछ" शीर्षक निबन्ध संग्रह में "मोटर स्टैंड" रिपोर्ताज है । बख्शीजी निबन्धों में संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज तीनों शैलियों में आत्मपरक कथन कहते चलते हैं ।

उपेंद्रनाथ अश्क के "रेखाएँ और चित्र" में रिपोर्ताज भी संकलित हैं । निबन्ध रिपोर्ताज, शीर्षक से "कलम घसीट", "पहाड़ों का प्रेममय संगीत", "रंगमंच के व्यावहारिक अनुभव", "है कुछ ऐसी बात जो चुप हूँ" संकलित हैं ।"कलम घसीट" को रिपोर्ताज शैली में लिखा गया रेखाचित्र कहा जा सकता है । डा॰ प्रभाकर माचवे ने "जब प्रभाकर पाताल गए" में इस शैली में रिपोर्ताजों के सफल प्रयोग किए हैं ।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने भी अच्छे रिपोर्ताज लिखे हैं । "कागज की किश्तियाँ" शीर्षक संग्रह में "इतिहास और कल्पना शीर्षक से संकलित सामग्री में "जब पॉपेआई को प्रलय ने वरा" शीर्षक काल्पनिक रेडियो कमेंट्री रिपोर्ताज शैली में ही लिखी गयी है ।

कामता प्रसाद सिंह लिखित "मै छोटानागपुर में हूँ" में छोटा नागपुर के जीवन और प्रकृति वैभव पर संस्मरणात्मक शैली में भौगोलिक, ऐतिहासिक ज्ञान के परिवेश में रिपोर्ताज है । तिलकराज सिंह ने "बिन्दु-बिन्दु" में इस विधा में ही सफल प्रयोग किए है ।

भदंत आनन्द कौसल्यायन की कृति "देश की मिट्टी बुलाती है" में कुछ अच्छे रिपोर्ताज हैं । "जापानी युद्ध बन्दियों के अन्तिम क्षण" ऐतिहासिक महत्व का रिपोर्ताज है ।

अमृतराय तथा ठाकुर प्रसाद सिंह ने भी अच्छे रिपोर्ताज लिखे हैं । सत्यकाम् विद्यालंकार तथा धर्मवीर भारती भी धर्मयुग में रिपोर्ताज लिखते रहे हैं ।

भारत पाक युद्ध पर शिवसागर मिश्र का रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ है । धर्मयुग में समुद्रतट के मछुओं की जिन्दगी पर एक रिपोर्ताज "गरजते सागर के समक्ष निहत्थे" शीर्षक से ओमप्रकाश शर्मा ने लिखा । इधर दिनेश पालीवाल, अवधेशकुमार श्रीवास्तव ने भी रिपोर्ताज लिखे है ।

बिहार के भयंकर सूखे पर फणीश्वरनाथ "रेणु" ने भी मार्मिक रिपोर्ताज लिखे हैं ।

रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज : रेणु के प्रयोग और विकासक्रम

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में जहाँ एक ओर फणीश्वरनाथ रेणु वर्चस्वी कथाकार के रूप में स्थापित हैं, वहीं उनके द्वारा लिखे गये संस्मरणों, रेखाचित्रों और रिपोर्ताजों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद साहित्य में एक नयी विधा का प्रादुर्भाव हुआ - रिपोर्ताज । रेणु रिपोर्ताज-लेखक के रूप में अप्रतिम हैं या यों कहें कि रेणु उन रिपोर्ताज लेखकों में से हैं जिन्होंने इस विधा को हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित किया ।

रेणु का पहला रिपोर्ताज, "डायन कोसी" साप्ताहिक "जनता" (सम्पादक - रामवृक्ष बेनीपुरी) में 1947 में प्रकाशित हुआ और प्रकाशन के साथ ही कई भाषाओं में अनूदित भी हुआ । "जै गंगा", "हड्डियों का पुल" (1948) भी "डायन कोसी" की श्रृंखला में लिखे गये रिपोर्ताज हैं, जिसकी वस्तु का चरण विकास "पुरानी कहानी : नया पाठ व 1975 में पटना की जल-प्रलय लीला पर लिखे गए रिपोर्ताज में देखा जा सकता है । पूर्णिया के शरणार्थी शिविर पर लिखित "एकटु आस्ते-आस्ते" रिपोर्ताज पर सोशलिस्ट पार्टी में विवाद पैदा हो गया - ढेर सारे लोग रेणु के विरोधी हो गए - उन्हें सोसलिस्ट पार्टी से निकालने को भी लोग उद्यत हो गये । अन्त में जय प्रकाश नारायण ने इस विवाद को सुलझाया ।

1946 में (आजादी के पूर्व) विराट नगर के जूट मिल - मजदूरों के आन्दोलन में शामिल होने के कारण रेणु भी जेल में रहे । अँगेज डी·एस·पी· के मजदूरों के साथ किये गए जुल्म का पूरा चित्र उन्होंने एक लम्बे रिपोर्ताज के रूप में लिखा और एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करवाया - "डी·एस·पी· की बड़ी-बड़ी मूँछें" । इसी प्रकार रेणु की लिखी रिपोर्ताजों की कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं, जो आज लुप्तप्राय हैं । डालमिया नगर में हुई मजदूरों की हड़ताल पर रेणु का रिपोर्ताज - "घोड़े की टाप पर लोहे की रामधुन" की भी अपने समय में काफी चर्चा रही । "जनता" के 1951 के छः अंकों में रेणु का लम्बा रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ - "हिल रहा हिमालय" ।

1949 में रेणु ने पूर्णिया से "नई दिशा" नामक साप्ताहिक पत्र की शुरुआत की, जिसमें वे कई नामों से कई तरह की रचनाएँ लिखा करते थे । 1950 में यह पत्र बन्द हो गया । फिर पटना से 1952 में उन्होंने "नया कदम" निकाला (नेपाली कांग्रेस के लिए), जिसके भी कुछ ही अंक निकल पाये । इसका भी पूरा अंक उन्हीं का लिखा होता था । इन दोनों पत्रों के बाद रेणु पटना से ही प्रकाशित "आवाज" एवं "उजाला" (दोनों के सम्पादक - गुरु उप्पल) में यदा-कदा रिपोर्ताज लिखते रहे ।

1965 के प्रारम्भ से "दिनमान" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिसके तत्कालीन सम्पादक अज्ञेय ने बिहार के प्रतिनिधि के रूप में रेणु को नियुक्त किया, और वे अपने जीवन-काल में सबसे लम्बे समय तक (यानी 1965 से 1975 तक) इस पत्र के लिए रपटें व रिपोर्ताज

लिखते रहे । 1966 में सूखे पर और 1975 में पटना की जल-प्रलय लीला पर लिखे रिपोर्ताज ("ऋणजल धनजल" में संकलित), "दिनमान" में प्रकाशित हुए । 1971 में लिखित "नेपाली क्रान्ति-कथा" (रेणु का सबसे लम्बा रिपोर्ताज) और बंगलादेश की मुक्ति-संग्राम पर उनका काव्यात्मक रिपोर्ताज "श्रुत - अश्रुत पूर्व" भी "दिनमान" में ही प्रकाशित हुआ था ।

रेणु ने सन् पचास से सत्तर के बीच अनेक रेखाचित्र लिखा, जो भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे । रेणु ने अपना पहला रेखाचित्र 1954 में "दिल बहादुर दस्यु" लिखा जो "नयी धारा" के अप्रैल में प्रकाशित हुआ । फिर "विषयान्तर" जो "अवन्तिका" जनवरी 1957 में प्रकाशित हुआ । इसमें रेणु ने केवल "भिंगल मामा" का स्केच खींचा है वरन् स्केच-विधा के स्व-रचाव, वस्तु-विन्यास या बनावट के बारे में रेणु की स्थापना है । इस प्रकार यह दोहरे महत्व का है । रेणु "नई कहानियाँ" के लिए भी रेखाचित्र लिखते रहे जो मई से सितम्बर तक के अंक में क्रमशः यशपाल, अज्ञेय, अश्क, जैनेन्द्र और उग्र निकला । "कमता स्मृति ग्रन्थ" में 1968 में "काम" रेखाचित्र प्रकाशित हुआ एवं "स्थापना" - सितम्बर 1970 में त्रिलोचन । ये वे रेखाचित्र हैं जिसमें रेणु ने अपने से वरिष्ठ हिन्दी के लेखकों पर लिखा है ।

इसके साथ ही रेणु ने नेपाली, उर्दू एवं बंगला के लेखकों का भी रेखाचित्र खींचा है । "रफ्तारे-नौ" अंक तीन 1960 में प्रकाशित हुआ । बालकृष्ण "सम" । रवीन्द्र शत-वार्षिकी के उपलक्ष्य में उन्होंने लिखा "मानव रवीन्द्रनाथ" जिसका हिन्दी में प्रकाशन दिसम्बर 1971 में हुआ । "राम पाठक की डायरी से" मराल (वाराणसी) का

बंगला नवलेखन विशेषांक जनवरी 1965 में प्रकाशित हुआ एवं "भादुड़ीजी" सुबल गांगुली द्वारा सम्पादित "सतीनाथ-स्मरणे" पुस्तक में संकलित (1972) है ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने साधारण पात्रों पर भी रेखाचित्र लिखे हैं जिनमें से कुछ उनके जीवन काल में छपे और कुछ मरणोपरान्त । "स्टिल लाइफ" (निकष/जनवरी 1957) में और "ईश्वररे, मेरे बेचारे ..." (ज्योत्स्ना/अप्रैल 1973) में । "कुसुमलाल" और "जाहिद अली" (जो अपूर्ण है) "सारिका" । अप्रैल 1979 में प्रकाशित हुआ ।

इनमें से अधिकांश रेखाचित्र बन तुलसी की गन्ध में संकलित हैं । रेणु के इन स्केचों में उनके अपने व्यक्तिगत ढेर सारे संस्मरण हैं ।

रेणु के रेखाचित्र, संस्मरण एवं रिपोर्ताज इस प्रकार घुले मिले हैं कि उन्हें अलग-अलग खानों में रखना कठिन है, कहीं उन्होंने संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखे हैं, तो कहीं रिपोर्ताज विधा में संस्मरण ।

.....

द्वितीय अध्याय

रेणु की प्रमुख कृतियाँ और उनका विश्लेषण

रेखाचित्र, संस्मरण और रिपोर्ताज विधा में "रेणु" के प्रयोग और उसके विस्तार को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उनकी प्रमुख कृतियों का विश्लेषण विस्तारपूर्वक किया जाय । "ऋणजल धनजल", "नेपाली क्रान्ति-कथा", "श्रुत अश्रुत पूर्व", एवं "बन तुलसी की गन्ध" के माध्यम से रेणु के साहित्यिक विस्तार को समझा जा सकता है ।

ऋणजल धनजल : जीवन संघर्ष की गाथा - सन् 1966 का भयानक सूखा - जब अकाल की काली छाया ने पूरे दक्षिण-बिहार को अपनी लपेट में ले लिया था और शुष्क प्राण धरती पर कंकाल ही कंकाल नजर आने लगे थे ... और सन् 1975 की प्रलयंकर बाढ़ जब पटना की सड़कों पर वेगवती वन्या उमड़ पड़ी थी और लाखों का जीवन संकट में पड़ गया था ... अक्षय करुणा और अतल स्पर्शी संवेदना के धनी कथाकार फणीश्वर-नाथ "रेणु" प्राकृतिक प्रकोप की इन दो महती विभीषिकाओं के प्रत्यक्ष-

दर्शी तो रहे ही, बाढ़ के दौरान कई दिनों तक एक मकान के दुतल्ले पर घिरे रहने के कारण भुक्तभोगी भी । अपने सामने और अपने चारों ओर मानवीय विवशता और यातना का वह त्रासमय हाहाकार देखकर उनका पीड़ा मथित हो उठना स्वाभाविक था, विशेषत: तब, जब कि उनके लिए हमेशा "लोग" और "लोगों का जीवन" ही सत्य रहा हो, आगे चलकर मानव-यातना के उन्हीं चरम साक्षात्कार क्षणों को शाब्दिक अक्षरता प्रदान करने के क्रम में उन्होंने संस्मरणात्मक रिपोर्ताज लिखे और उन्हीं का संकलित रूप यह पुस्तक "ऋणजल-धनजल" है ।

वस्तुत: बाढ़ और सूखा दोनों ही भारतीय अकाल के तत्व हैं । अकाल जैसे भारतीय गांव की नियति है । भारतीय गाँवों में आर्थिक जड़ता जितनी एक रूप है, उनका साँस्कृतिक वैभव उतना ही विविध है । सदियों से सहजीवी अनेक जाति समुदायों वाली यह ग्राम-संस्कृति "मिट्टी की प्रतिमा उदासनी" बन जाय इससे बड़ी दुर्घटना सम्पूर्ण इतिहास में और क्या हो सकती है ?

"ऋणजल-धनजल" एक अतिकाय दु:स्वप्न है । इन घटनाक्रमों से रेणु का व्यक्तिगत सम्बन्ध है । उनके ही शब्दों में, "मेरा गाँव ऐसे इलाके में है जहाँ हर साल पश्चिम-पूरब और दक्षिण की कोसी, पनार, महानन्दा और गंगा की बाढ़ से पीड़ित प्राणियों के समूह आकर पनाह लेते हैं । सावन-भादो में ट्रेन की खिड़कियों से विशाल और सपाट परती पर गाय-बैल-भैंस-बकरियों-भेड़ों के हज़ारों झुण्ड-के-झुण्ड देखकर ही लोग विभीषिका का अन्दाज लगा लेते हैं ।" (1)

सन् '47 के आस-पास शुरु होकर श्रृंखला" 75 तक चलती है । कोसी क्षेत्र से परिदृश्य बदलकर पटना तक विस्तरित होता है । जहाँ

पत्रकारिता के लिए बाढ और सूखा खबरें हैं, वहाँ रेणु के लिए वे भारतीय गांवों के काल पृष्ठ पर लिखे गये नियति के अभिलेख हैं ।

कोसी अंचल में बाढ़ जहाँ एक नियत घटना-क्रम है, वहाँ पटना की बाढ़ एक आकस्मिक दुर्योग है । शहर की बाढ़ और गांव की बाढ़ में बड़ा फर्क होता है । गांव में, पूरा ग्राम-समुदाय एक दूसरे से जुड़ा होता है, शहर का आदमी आत्म-केन्द्रित होता है । तभी तो, किसी मुहल्ले में पानी घुस आया या पूरा इलाका डूब गया यह शोक का नहीं, चर्चा का विषय होता है । यहाँ हर आदमी रिलीफ का ज्यादा-से-ज्यादा सामान लूटने में लगा है भले ही उसे उसकी आवश्यकता न हो ।"यहाँ मनुष्य नहीं रहते, रेणु "मनुष्य" की परिभाषा करते हैं - जिसको अपने मान का होस हो । यहाँ किसी को अपने मान का होस नहीं सभी पशु बने हैं, जंगली पशु । पशु क्या सचमुच ऐसे संवेदनहीन होते हैं जैसे मनुष्य-मनुष्य के प्रति हो गया है ? लेखक को याद आ जाती है एक पुरानी बाढ़ । 1947 की मनिहारी इलाके के गंगा मइया की बाढ़ से पीड़ित क्षेत्र में लेखक बाढ़-पीड़ित लोगों को राहत पहुँचाने के लिए एक रिलीफ पार्टी में सम्मिलित होकर गया था । गाँव के बीमारों को नाव पर चढ़ाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाने का कार्यक्रम था । एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी नाव पर चढ़ आया । डाक्टर बड़ा भयभीत हो गया और चिल्लाने लगा, आरे कुकुर नहीं, कुकुर नहीं ··· कुकुर को भगाओ । वह बीमार नौजवान छप से पानी में उतर गया । "हमारा कुकुर नहीं जायेगी तो हमहू नहीं जायेगा" फिर कुत्ता भी छपाक पानी में गिरा । "हमारा आदमी नहीं जायगा तो हमहू नहीं जायेगा ।"

(28)

देश और काल के बदलते परिदृश्य में एक ही अनुभव सतत् बना रहता है - आतंक और मृत्यु का अनुभव । पर इनके बीच संघर्ष-शील मनुष्य की वह गाथा भी साकार होती है जिसके कारण वह इन तमाम परिस्थितियों में भी अजेय बना रह जाता है । "मुसहरी गाँव में लोग मछली और चूहों को झुलसा कर खा रहे हैं । किसी तरह जी रहे हैं । यह मृत्यु का जीवन पर आक्रमण है यह मृत्यु जीवन को निगल जाना चाहती है, परन्तु ऐसे ही अवसर पर जीवन की शक्ति अपनी पूरी सक्रियता पर है । इधर मृत्यु लोगों के सर पर मंडरा रही है । उधर जाकर देखा एक ऊँची जगह मचान पर स्टेज की तरह बनाया गया है । "बलवाही नाच हो रहा था । लाल साड़ी पहनकर काला-कलूटा नटुआ दुल्हिन का हाव-भाव दिखला रहा था । यानी वह धानी है । धरनी, धानी धर छोड़कर मायके भागी जा रही है और उसका घरवाला पुरुष उसको मनाकर राह से लौटाने गया है । इस जीवन और मृत्यु के संघर्ष में लेखक ने मृत्यु पर जीवन के विजय की घोषणा की है ।

रेणु स्मृतियों से उबरते हैं क्या शहर सचमुच मनुष्यों से खाली है । नहीं अब भी ऐसे लोग हैं जिन्हें यह शहरी विस्तार अमानवीय नहीं बना पाया है । वे दूसरों के दुख में दुखी होते हैं उनके जरुरत में काम आते हैं । ऐसे लोग बाढ़ का पानी घुसते ही सहायता लेकर आते हैं । सचमुच की सहायता, सरकारी सहायता की तरह केवल सहायता की खबरें नहीं । ये बहुमंजिली इमारतों पर नहीं फेंकते फफूँद लगी डबल रोटी, ये बाँटते हैं ताजी रोटी अधबनी इमारतों में शरण ले रहे लोगों को, ऊँची दीवारों पर प्राण रक्षा

करते लोगों को । ये वे लोग हैं जो बाढ़ के पानी में घुस कर आते हैं एक बीमार लेखक का हाल-चाल लेने और कोशिश करते हैं उसकी हर जरूरत को पूरी करने का । इनका लेखक से कोई पारिवारिक रिस्ता नहीं, फिर भी ये अपने हैं, किसी भी रिस्तेदार से अधिक नजदीकी ।

घटना प्राकृतिक भी हो सकती है और मानवकृत संकट भी । इनके आपसी रिश्तों को सामाजिक और मानवीय हित में तय करना रेणु के इस रचनाधर्मी रिपोर्ताज का उद्देश्य है । यह इसका गहरा सामाजिक अर्थ है ।

सूखा, ऊपर से देखने पर दैवी परन्तु, वास्तव में मानवकृत संकटों में से एक है । रिपोर्ताज की शुरुआत क्षोभ और गहरी पीड़ा से होती है । मानवता के ह्रास्य की पीड़ा, उस व्यवस्था के प्रति क्षोभ जिसमें मनुष्य की मनुष्यता (मर) रही है तभी तो "रोज दिल्ली अर्थात् केन्द्र से को - न - कोई "अन्नदाता" उड़कर आता है "ड्राउट" देखने (छत्तर का मेला हो गया यह ड्राउट !) रोज राज्य का कोई-न-कोई मालिक (बड़ा, छोटा, मँझला, सँझला, पाँचू, छट, सतो ... मालिकों का अकाल है यहाँ ? एक पर एक मालिक हैं) "भयानक" और "भीषण" बयान दे डालता है, केन्द्र के अन्नदाता कहते हैं, पहले उन चूहों का अन्त करो जो अन्न वस्त्र को ही नहीं - सारे राज्य की जनता की आत्मा को कुतर रहे हैं ।" 79

देखना होगा कौन है असली चूहा जो बाढ़ की तरह दुग्धोज्ज्वल खादी की टोपियों में छा जाता है सूखाग्रस्त राज्य

की राजधानी में और खाली कर देता है अण्डे, मुर्गी से लेकर सब्जी तक का स्टॉक । पर किसके पास फुरसत है इन्हें देखने की । जो देखे वो पागल है या बेकाम का आदमी, जैसे - जयप्रकाश नारायण ।

अखबारों की मोटी सुर्खियाँ रोज-रोज एक ही बात को विभिन्न शब्दों में दुहराती हैं । राजधानी में, शहरों में दीपावलियाँ सजती हैं । पटाखे फूटते हैं, फुलझड़ियाँ छूटती हैं । ... उधर, गया के गाँवों में ,मुँगेर के दक्षिणी हिस्से में, पालामू और हजारीबाग की पहाड़ियों और जंगलों को धरती की छातियाँ दरकती जाती हैं, पानी पाताल की ओर खिसकता जा रहा है । आदमी भूख से ऐंठ-ऐंठ कर मरने लगते हैं । यह सब एक साथ, एक ही समय में एक ही देश के अन्दर घटता है । लोग मरे जा रहे हैं सूखे की वजह से पर जिनके पास ढेरों खाना और पानी है; जिनके पास जीवित रहने के सब साधन हैं वे ऐसे मरे हुए लोग हैं जिनपर अब दूसरों की मौत का भी असर नहीं होता वे दिवालियाँ मनाते रहते हैं ।

सुविधाओं के बीच अपने को शर्मिंदा और अपराधी महसूस करता है लेखक और जाता है, देखने एक सूखाग्रस्त इलाके को "छत्तर मेले" की तरह नहीं, एक भयावह सत्य का साक्षात्कार करने । रेणु ने जो देखा, जो सुना वह लिखा । किन्तु उनका रिपोर्ताज एक चित्र की तरह नहीं होता, जिसमें सिर्फ वाह्य आकृति ही आती है । उनका देखना ऐसा है जो एक साथ बाहर और भीतर देखता है ।

रेणु के रिपोर्ताज से केवल सूखे की स्थिति का ही पता नहीं चलता वरन् यह भी कि इस स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है । जिम्मेदार है यह अर्थ व्यवस्था जो मनुष्य और मनुष्य के बीच इतनी गहरी असमानता पैदा करती है । एक ओर तो ऐसे लोगों का समूह है जिनको भात खाए महीनों बीत गए और तीन-तीन दिन बीत जाते हैं और एक मड़ुआ की रोटी भी नहीं मिलती । दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जिनके पास अन्न का भंडार पड़ा है । कौन है इसका जिम्मेदार क्या भगवान ! नहीं यह तो मालिकों के बचाव का एक हथियार है, बस । ये भूखे लोग इन्कार करते हैं ऐसे भगवान की सत्ता को मानने से जो उनके किसी काम का नहीं । "अरे भगवान् ... भगवान् मालिक-बने सब के ओर ... नहित भागवानो आन्हर है कि बहिर ... हाय रे ... एसन अनियाव ? तीन-तीन दिन पर हमन के एकगो मड़ुओ के रोटी न मिले और हुनकर हवेली में पुरनमासी के सतनरैनजी के कथा में पूड़ी-बुँदिया केर जेवार ... और सुआब ऐसन कि बोलो मत । चोरी में पकड़ा देगा, डकैती में फँसा देगा । जेहल में देगा । ... ... जेहल में देगा, त उहे दे दो । जेलवा में खाये के त मिलतई ? हः हः गरीब के देखे वाला कोय न हीं ... ।" यह भूखी, कमजोर और लाचार स्त्री क्या करे, श्राप देकर अपने मन का क्षोभ कम करती है ।

क्या करती है यह सरकार और इनके अधिकारी इन लोगों के लिए । ये अधिकारी केवल आँकड़े जुटाते हैं और अपने कार्यालय में बैठ कर अपने सहायता कार्य की रिपोर्ट देते रहते हैं । सहायता

के लिए अनाज आता भी है तो वह स्टेशन पर पड़ा-पड़ा सड़ता रहता है। भूख से व्याकुल वे लोग, जिनके नाम पर वह अनाज आया है, अगर वहाँ से अनाज उठाते हैं तो वे चोर कहलाते हैं। उन्हें अनाज बाँटने की व्यवस्था तो ये अधिकारी कर नहीं सकते उन्हें पकड़ने के लिए, सजा देने के लिए पुलिस की व्यवस्था करते हैं। क्या करे ऐसे में कोई संवेदनशील व्यक्ति मजबूर होकर बन जाता है नक्षत्र मालाकार। लूट पर उतर आने के सिवाय कोई रास्ता इस व्यवस्था ने नहीं छोड़ा उसके लिए। क्या वह, वह सचमुच लुटेरा था ? नहीं उसकी गल्ती बस इतनी थी कि वह अब तक एक जिन्दा मनुष्य था जिसकी आँखों को दूसरों का दुख, उनकी पीड़ा देखी न गयी। तभी तो वह कहता है "एक बार इन गाँवों में आकर देखो। सब कुछ भूल जाओगे ... आदमी इतना बेदर्द हो सकता है ? ... सात दिन के भूखे बच्चों के मुँह पर हँसी देखकर जेल-फाँसी और नरक सब कबूल करके तुम भी वही शुरू करोगे जो मैं कर रहा हूँ।"

सूखे की इस रपट में आन्तरिक विवशता को रेणु ने खूब पहचाना है - क्या हो गया है उन्हें। आत्मालाप में डूबी यह नाटकीयता सहसा प्रगीत में बदल जाती है। एक दुःखद गीत की कड़ी की तरह। सूखे ने रेणु के मन को गहरे स्तर पर छुआ है। मनुष्य की नियति यही है क्या ? व्यवस्था क्या इसी विडंबना का नाम है ? क्या ईश्वर इसका अकेला निर्देशक है या उसके कुछ मानव

अमले भी हैं, जो अलग-अलग हिस्से का निर्देशन कर रहे हैं ? रेणु सूखे को इस घटना को इसी सामाजिक अर्थ में देखते हैं ।

सूखे का प्राकृतिक घटना से अधिक मानवीय दुर्भावना के रूप में चित्रित करके लेखक ने वर्ग-विभाजित समाज में छिपी वास्तविकता को उघाड़ कर रख दिया है । ऋणजल का अदृश्य आतंक निरन्तर दृश्य होता चलता है - पशुधन और मनुष्य की अपूरणीय क्षति । जीवन पर मृत्यु की गहराती छाया । यह एक ऐसा अनुभव है जिसे रेणु पूरी मानवीय ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करते हैं ।

रेणु के जो दो वृतान्त इस पुस्तक में संकलित हैं, दोनों वृतान्तों में नौ वर्ष का अन्तर है । लेखक के मन में अपने कवि - मानस की निरन्तरता की इच्छा का अनुमान हम इसी से कर सकते हैं कि उन्होंने यह संकलन तैयार करते हुए ऊपर से देखने पर दैवी, परन्तु वास्तव में मानवकृत संकटों के अपने नौ वर्ष पहले और बाद के अनुभवों को अन्तर्युक्त माना । रेणु ने अकाल जैसे सामाजिक अनुभव में बैठकर 1966 के पहले भी कुछ-न-कुछ लिखा था, किन्तु अवश्य ही निरी किताब बनाना उनका उद्देश्य न था । किसी ईमानदार लेखक के लिए किताब की संरचना भी उतनी ही सृजनात्मक होती है जितनी उसमें या अन्यत्र संकलित उसकी रचनाएँ हैं और "ऋणजल" और "धनजल" को एक साथ रखने में निश्चय ही रेणु का कोई रचनात्मक प्रयोजन रहा होगा निरा शब्द चमत्कार नहीं ।

रेणु इस संकलन को एक भूमिका लिख चुके थे पर वह भूमिका कभी प्राप्त नहीं हुई । इससे हम रेणु के रचना-प्रक्रिया-जगत में बैठ

कर अनुमान ही लगा सकते हैं कि किस कलात्मक कारण से उन्होंने इस पुस्तक की सृष्टि की होगी । वह कारण शायद यही रहा होगा कि इन दो वृत्तान्तों में वह भीतर से बाहर और बाहर से भीतर की अपनी मानस-यात्राओं का रचनात्मक अन्तरसम्बन्ध देख पाये थे । ये रिपोर्ताज इस बात के प्रमाण हैं कि कोई रपट भी उतनी सर्जनात्मक हो सकती है जितनी वह रचना, जो रपट नहीं है ।

नेपाली क्रान्ति-कथा : जन-संघर्षों का इतिहास

"नेपाली क्रान्ति-कथा" रेणु का सबसे लम्बा रिपोर्ताज है । रिपोर्ताज लिखने के लिए जनता से सच्चा प्रेम होना चाहिए । वैसे तो साहित्य के सभी रूपों के लिए यह शर्त है लेकिन रिपोर्ताज के लिए वह और भी जरुरी है । वीरों का वर्णन करने के लिए थोड़ी वीरता लेखक में भी होनी चाहिए, नहीं तो वह रीतिकालीन कवियों की वीरगाथा ही लिख सकेगा ।

सन् '50 में नेपाल में साधारण आदमी की मुक्ति के लिए सशस्त्र युद्ध शुरु हुआ । नेपाल में यह क्रान्ति हुई थी राणाओं की अराजकता के विरुद्ध । राणा शासन को अपदस्थ करने के हेतु नेपाली कॉंग्रेस ने जो सशस्त्र क्रान्ति छेड़ी थी उसमें "रेणु" भी शामिल हो गए और मुक्ति सेना के फौजी वर्दी में नेपालियों के साथ बंदूक लेकर मोर्चे पर कूद पड़े । क्रान्ति के समय उन्होंने नेपाली कॉंग्रेस के प्रचार-प्रकाशन तथा विराट नगर से स्थापित एक गैर-कानूनी आकाशवाणी के संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

नेपाल की क्रान्ति थी जनक्रान्ति और सशस्त्र क्रान्ति । यह नाना विभागों और फ्रन्टों में विभाजित सुसंगठित क्रान्ति थी । यहाँ तक कि इसका अस्त्र-शस्त्र और गुप्तचर-विभाग भी था । राणाशाही से नेपाल के किसी टुकड़े की मुक्ति का नहीं, वरन् सम्पूर्ण नेपाल की मुक्ति का बीड़ा इसने उठाया था । इसका लक्ष्य था वहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना । तरह-तरह की सहायता पाने के लिए इसके नेताओं ने विदेशों से भी सम्पर्क किया था । भारत तथा नेपाल की कितनी कुशल यौद्धिक हस्तियों ने इसमें भाग लेकर सहायता पहुँचाई थी ।

"नेपाली क्रान्ति-कथा" सशस्त्र क्रान्ति का साहित्यक इतिहास है । भले ही उसमें सम्पूर्ण क्रान्ति की ब्योरेवार कथा, तारीख और सन् के साथ न लिखी गयी हो । इसमें सशस्त्र क्रान्ति की साहित्यक झांकियाँ हैं । झांकियों की विशेषता है कि ये रोमांचक जनयुद्ध को आँकती हैं । युद्ध की योजना, उसकी तैयारी, युद्ध यात्रा में मोर्चों का लगना; दो दलों के बीच मोर्चों पर घात-प्रतिघात; साक्षात् युद्ध; हथियार डालना; युद्ध की खून-खराबी; युद्ध के सिलसिले में प्रचार कार्य; दबी जनता का राणाशाही के विरुद्ध हौसला; आदि का कानों सुना - आँखों देखा, लड़ाई के मैदान में खुद सक्रिय रूप से भाग लेने वाले "रेणु" द्वारा साहित्यक वर्णन है ।

"नेपाली क्रान्ति-कथा" त्याग, उत्साह, बलिदान की कहानियों से भरी पड़ी हैं, क्योंकि यहाँ प्रसंग ही युद्ध का है -

जनता का विद्रोह, तानाशाह के खिलाफ । बलबहादुर नेपाल के एक पहाड़ी गाँव में अपनी वृद्धा माता और पाँच साल के पुत्र को छोड़कर सहर्ष जनक्रान्ति में सम्मिलित हो गया था । इस क्रान्ति में वह काम आ गया, मगर मरते-मरते उसने अपने कई साथियों के प्राणों की रक्षा की । उसने मृत्यु से पहले की शाम को चाय पीते समय एक पहाड़ी गीत सुनाया था, जिसका भावार्थ इस प्रकार है : "युद्ध के मैदान में मरने वाले सीधे स्वर्ग पहुँचते हैं ? मेरी राह रोककर कौन खड़े हैं ? पिता ? माँ ? स्त्री ? पुत्र ? मैं किसी को नहीं पहचानता सभी हट जाओ मेरी राह से । मेरी आत्मा सीधे स्वर्ग पहुँचने के लिए मचल रही है ।" इस गीत का उल्लेख कर लेखक यह कहना चाहता है कि जब आम आदमी शोषण और अत्याचार के खिलाफ उठ खड़ा होता है तब रास्ते के चट्टान या फूल कोई भी उसकी राह में बाधा नहीं बन सकता ।

जब भी कोई क्रान्ति होती है तो एक तरफ वे लोग होते हैं जो मौजूदा शोषण व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष कर रहे होते हैं तो दूसरी तरफ वे लोग जो इस शोषण व्यवस्था को बनाये रखने में मददगार थे । रेणु ऐसे लोगों के बारे में बताना नहीं भूलते । विराट-नगर पर जब मुक्ति सेनानियों ने अपना मोर्चा बाँधा तब एक मलहूराम की बड़ी बुरी तस्वीर बन गई । राइफल क्या छूटती है कि उनके लिए बम की आवाज आती है । तोप की आवाज आती है तब वे समझते हैं कि बाजार का एक-एक टुकड़ा आसमान में उड़ा जा रहा है । " उनका मुँह खुला है - जबड़े बैठ नहीं रहे है । पहली बार "फाइरिंग" की आवाज सुनकर उनका मुँह खुला तो खुला ही रह

गया । खुले हुए जबड़े के कारण वे कुछ भी स्पष्ट उच्चारण नहीं कर पाते - पयय - अर्थात् प्रलय । ये चल-फिर सकते हैं । तिजोरी को देखकर उनको लकवा मार जाता है - रुपये, जेवर, सोना वह लाचार है ।" मल्हूराम का काम रहा भारत-नेपाल सीमा पर माल इधर से उधर, उधर से इधर करना । इस इधर-उधर में वे माला-माल हो गए हैं, मगर आज उनके जबड़े काम नहीं कर रहे हैं । मार्मिक व्यक्तियों और घटनाओं की ऐसी अनेक रपटें रेणु ने दी है ।

ऊषा नाम की एक लड़की है । उसके दो भाई मुक्ति युद्ध में जा चुके हैं । मुक्ति सेना उसके घर के नीचे से गुजरती है, तब यह लड़की, जो परिवारवालों के रोक रखने पर सेनानी नहीं बन सकी थी, नारे लगाती है - "नेपाली कांग्रेस जिन्दाबाद ! राणाशाही मुर्दाबाद ! प्रजातन्त्र कायम हो !" सम्पूर्ण क्रान्ति-कथा में रेणु ने कहीं भी स्त्रियों को पुरुषों से कम करके नहीं दिखाया है । वो सानो आमाँ (श्रीमती दिया कोइराला) हों या उषा - ये इस शोषण सत्ता के सामने सिर झुकाने से इन्कार करती हैं ।

राणाशाही शासन जो किसी भी कीमत पर जनता को गुलाम बनाए रखना चाहती थी वह जनता का विद्रोह देखकर पागल हो उठती है । राणाशाही के नारकीय कृत्यों का एक नमूना रेणु ने दिया है - "शहीदों की धरती पर राणाशाही फौज ने पुनः सामन्तवाद का झंडा गाड़ दिया और इसके बाद शुरु हुई पैशाचिक लीला - अस्पताल के मरीजों की, उनके "बेड" पर ही गोलो मार कर हत्याएँ की गईं ... बच्चों, बूढ़ों और अपाहिजों को भी

नहीं छोड़ा गया । देखते-देखते सारा वीरगंज श्मशान हो गया । जलते हुए घर ... अर्तनाद ... क्रंदन और हवा में जलती हुई लाशों की चिड़ाइन गंध । साकार रौरव नरक के दृश्य चारो ओर ।"

इस क्रान्ति के बारे में "रेणु" को जितनी जानकारी है उसे वे कहते चलते हैं जोरदार, असरदार तरीके से और अपनी स्वाभाविक भाषा में । किन्तु उनका अपना ही स्वर अन्त तक आते-आते डूबने लगता है जब वे देखते हैं कि इतने बलिदानों के बाद उनके नेता समझौता वार्ता कर लेते हैं उसी तानाशाही शासन से । क्या फायदा हुआ इस जोत का ? इतने बलिदानों का ? किन्तु जो भी हुआ रेणु उससे सहमत नहीं । क्रान्ति में भाग लेने वाले अधिकांश लोग असहमत हैं । यह असहमति आपसी मदभेद और ईर्ष्या का कारण बन जाती है । ऐसा क्यों हुआ ? इसका परिणाम क्या होगा ? इसका जबाब तत्काल रेणु के पास नहीं । समय ही इसका जबाब देगा । इसलिए इस प्रश्न पर रेणु मौन रह जाते हैं । किन्तु उनका मौन अधिक मुखर हो उठता है और उनकी असहमति अपने-आप जाहिर हो जाती है ।

"रेणु" के साहित्य में हिन्दी के व्यवहार के साथ-साथ व्यक्ति विशेष की विशेष लोक-भाषा या बोली के व्यवहार की जो यथार्थता है वह यहाँ बीच-बीच में मौजूद है । अपने कथा-साहित्य में भाषागत आंचलिकता के पुट के आदी "रेणु" ने यहाँ भी अपनी प्रकृति को बरकरार रखा है । कहीं लोक भाषा का एक-आध शब्द है और कहीं एक-आध वाक्य । इस तरह प्रसंग भी अनबूझ नहीं हुआ

है । ऐसे शब्द या वाक्य या तो मैथिली के हैं या नेपाली के, क्योंकि मोर्चे के ज्यादातर सशस्त्र सैनिक इसी बोली या भाषा के अंचल के हैं । अंगिका का व्यवहार भी एक-आध स्थल पर है । कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी बोली या भाषा के व्यवहार द्वारा किसी व्यक्ति की आवेशभरी आंचलिकता उभर कर आती है । हमारा भावावेश हमें बड़े सहज भाव से अपनी बोली या भाषा के व्यवहार के लिए बाध्य कर देता है ।

इस रिपोर्ताज की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें रेणु ने शोषण के सबसे क्रूर और छिपे हुए रूप को उजागर किया है । हर शासन सत्ता जो जनता को अज्ञान के अन्धकार में ढकेलती है । उसका कारण क्या है ? क्या साधनों का अभाव या फिर बढ़ती हुई जनसंख्या, नहीं ! उसका वही होता है जो नेपाल के तत्कालीन "तीन सरकार" चन्द्र शमशेर जंगबहादुर राणा इंग्लैण्ड में, अपने सम्मान में आयोजित एक भोज-सभा में भाषण देते हुए कहा - "महानुभावों आप लोगों ने हिन्दुस्तान के हर शहर में कालेज और हर गाँव में स्कूल खोलने की अबाध अनुमति दे दी है और आप यह आशा भी रखते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग "स्वराज्य" की माँग न करें ... मेरे देश में देखिए ! स्कूल, कॉलेज की बात दूर - एक पाठशाला तक खोलने की इजाजत हम नहीं देते । मेरे देश में, मेरे परिवार यानी राणाओं के बच्चे की पढ़ाई के लिए "दरबार स्कूल" के अलावा कोई "चटसार" तक नहीं ... सुख और चैन से शासन करना है तो प्रजा को मूर्ख बनाकर रखिए ... "

रेणु ने इन पंक्तियों को केवल नेपाली शोषण को दिखाने के लिए नहीं लिखा । वरन् उस से जनतांत्रिक दिखने वाली तमाम सरकारों का पर्दाफाश किया है जिसकी अधिकांश जनता अनपढ़ और अशिक्षित है ।

कुछ कलावादियों को इसमें राजनीति की बू आ सकती है । उनके हिसाब से शायद इससे साहित्य का स्तर नीचा होता है । किन्तु कोई भी ईमानदार साहित्यकार इसे नहीं स्वीकार सकता है । अगर जीवन का सत्य उजागर करने से साहित्य का स्तर नीचा होता है तो हो, इसमें कोई साहित्यकार क्या कर सकता है क्योंकि साहित्य जीवन से अलग हट कर तो चल नहीं सकता । आज के साहित्यकार से यह सबसे पहली माँग है कि "कला-कला के लिए" की रट छोड़कर, साहित्य को जीवन से सम्बन्धित करने का यही तरीका है कि लेखक आज के विद्रोह का इतिहासकार बने । "रेणु" ने अपने रिपोर्ताज में इस युग धर्म को पूरा किया है ।

श्रुत अश्रुत पूर्व : जहाँ-जहाँ मन टिका था - प्रख्यात कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु के वैयक्तिक निबन्धों, संस्मरणों एवं रिपोर्ताजों का संग्रह है - श्रुत अश्रुत पूर्व । इस संग्रह में एक ओर रेणु का परानपुर गांव है, तो दूसरी ओर उनकी छोटी माँ-नेपाल; एक ओर बम्बई की फिल्मी दुनियाँ है तो दूसरी ओर कलकत्ता का साहित्य जगत ।

इस संग्रह की अधिकांश रचनाओं में पात्रों और घटनाओं के साथ रेणु का तादात्म्य इतना गहरा है कि कई बार कहानी, संस्मरण

और रिपोर्ताज के बीच फर्क करना मुश्किल हो जाता है। अपने संस्मरणों और रिपोर्ताजों में रेणु का निजी व्यक्तित्व, सीधे-सीधे उभर कर सामने नहीं आता, बल्कि रेणु की संवेदना, अपने परिवेश और पात्रों में इतनी घुली-मिली है कि एक-दूसरे की उपस्थिति में ही उनके व्यक्तित्व को कोई आकृति प्रदान की जा सकती है। वस्तुत: इन निबन्धों, संस्मरणों एवं रिपोर्ताजों के माध्यम से रेणु के जीवन से जुड़े कई अनदेखे अनजाने पक्ष भी उद्घाटित होते हैं। "वह एक कहानी" एक ऐसा ही संस्मरण है। एक लेखक का अपनी प्रिय कहानी के पढ़ने और उसे महसूस करने की गाथा है। एक संवेदनशील लेखक की पीड़ा है एक ऐसी कौम के लिए, जिसकी बहादुरी, हौसले और जाँनिसारी की हजारों कहानियाँ सुनने के बावजूद, जिसे हम सिर्फ क्रूर, निर्मम और विवेकहीन समझते हैं। गोरे और गोरखे को हम एक ही दृष्टि से देखते हैं। "किंतु, इस कहानी को पढ़ने के बाद, मैंने लेखक की दृष्टि से ही इस लड़ाकू और दिलेर कौम को देखना शुरू किया उनसे जब कभी मिला, दिल खोलकर मिला।"

साहित्यिक रिपोर्ताज रेणु की कलात्मक संरचना के भी अंश है। जिस लोक लहर को रेणु ने आगे चलकर अपनी कला का विषय बनाया, उसका जीवन इन रपटों में है। जीवित साहित्यिक तत्व की तरह वह रेणु में प्रकट होता है। यही कारण है कि रेणु के रिपोर्ताज शैलीबद्ध और रीतिबद्ध भावों - मुद्राओं से प्राय: मुक्त है। इनमें राग-विराग की नाटकीयता के साथ-साथ प्रगति की आत्मीयता भी है जो रेणु के समस्त कला साहित्य की विशेषता है। इनमें अतीत का व्यामोहपूर्ण इन्द्रजाल भी है, व्यतीत होते हुए तथ्यों की पीड़ा भी है और साथ-साथ परिवर्तन का सहज उत्साह - उल्लास भी है। अनुभवों की ऐसी

निविड़ता अन्यत्र कम मिलती है । रेणु की इन कथा-रपटों का फलक निश्चित ही काफी विविध है - देशकाल के भीतर भी है और जनजीवन के सांस्कृतिक अन्तराल में भी है ।

"सोनो आमा" श्रृंखला के रिपोर्ताज भावना की दुनियाँ का एक अन्य परिपार्श्व प्रकट करते है । क्रान्ति-कथाएँ इनका अविभाज्य अंग है । "नेपाल : मेरी सोनो आमा" और क्रान्तिकथाएं - ये रपटें वस्तुत: एक ही वास्तविकता के प्रतिरूप है । सोनो आमा - छोटी माँ कभी बंगाल की धरती है, जिसे रेणु अपनी जन्मभूमि मानते है और कभी नेपाल की धरती, जो उनकी वास्तविक छोटी माँ है । क्रान्ति की प्रेरणा से भरी ये कथाएं अपनी गतियों में अतीत की नहीं है, उसके उस हिस्से की है जो व्यतीत होकर वर्तमान पर कुण्डली मारकर बैठा है । परिवर्तन के लिए पुकारती हुई धरती और जन-छटपटाती धरती की धड़कने - इन रपटों में बार-बार सुनायी पड़ती है । यह दुनियाँ तीसरी दुनियाँ की समस्त पीड़ाएं झेलती है - नये जन्म की पीड़ाएं । इस दुनियाँ से रेणु जुड़ते है । यों तो भारतीय साहित्य में यह गंध नयी नहीं है, पर उसका विस्तार एकदम नया है । क्रान्तिकारी मानसिकता की अनाहत निरंतरता को पहचानने के लिए ये रिपोर्ताज दस्तावेजी महत्व रखते है ।

जिन घटनाक्रमों से आये दिन हमारा देश गुजर रहा है उनमें भूदासों का जीवन सूखा-बाढ़, अकाल, हरिजन-हत्याएँ, भूमि संघर्ष, मंहगाई, बेकारी और जड़ता के अन्य अन्त तत्व वर्तमान है । ये तमाम समस्याएँ व्यापक और वास्तविक सूचनाओं की अपेक्षा रखती है । कलाकार का मन अगर इन समस्याओं से प्रतिकृत होता है तो इससे उसकी रचनात्मक संभावनाएं बढ़ती ही है । ऐसी वस्तुगत सूचनाओं से रेणु के

कलात्मक मन को प्रेरणा मिलती है। कला की कोई विधा रेणु के लिए हाथी दाँत की मीनार नहीं है। "एकलव्य के नोट्स" में रेणु गाँव के बारे में ये तमाम जानकारी देने की कोशिश करते है। इस छोटे से रिपोर्ताज के विस्तार में समा गया है - रेणु का गाँव-गाँव की आर्थिक व्यवस्था, गाँव की राजनीति और भूमि सुधार के नाम पर अफसरों की धाँधली जिसकी शिकार होती है गाँव की तमाम जनता। जो जन्म देती है आपसी अविश्वास और फूट को, और जिसका लाभ मिलता है हजारों बीघा जमीन वाले किसान को। रेणु उन सम्पादकों को भी इस रिपोर्ताज में कटहरे में ला खड़ा करते है जो जनता के साहित्यकार की रचनाओं को तरह-तरह के आरोपों के साथ वापस करते रहते है। कभी इन्हें साहित्य में साम्यवादी गंध दिखाई पड़ता है कभी समाजवादी, इनके अनुसार साहित्य में राजनीति नहीं होनी चाहिए। इन सम्पादकों से बड़ा कूटनीतिज्ञ कौन होगा ? जब जीवन को राजनीति प्रभावित करती है तब साहित्य राजनीति से कैसे अछूता रह सकता है। रेणु "जन-जागरण में साहित्यकार की भूमिका" के हिमायती थे और "राष्ट्र निर्माण में लेखक के सहयोग" में विश्वास करते थे।

सन् '75 का आन्दोलन। सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना - जय-प्रकाश नारायण के साथ रेणु भी देखते है। उस आन्दोलन के क्रम में लिखे रेणु के संस्मरण - "टूटते बिखरते सपनों की दास्तान" है। नेपाली क्रान्ति के दमन के बाद पुन: रेणु का क्रान्ति सपना देखना और उसमें शामिल होना ऐसा लगता है कि क्रान्तियाँ असफल होकर भी मरती नहीं है। वे दूब की तरह दब-दबकर उगना जानती है। यही तो काल-कथा का जीवन स्रोत है।

वे देश में होने वाली घटनाओं से उत्प्रेरित थे। उन्हें आशा हो चली थी कि भारतीय जनता के हस्तक्षेप से ही परिवर्तन सम्भव है। वे जयप्रकाश जी की ओर आशा और विश्वास भरी नजरों से देख रहे थे कि जनता की भावना को रणनीति में बदलने वाला नेतृत्व जयप्रकाश जी ही दे सकते हैं। किन्तु नेपाली क्रान्ति की तरह पुन: उनका सपना टूटता है। इन्हीं टूटते-बिखरते सपनों की दास्तान है रेणु के ये संस्मरण और रिपोर्ताज

वन तुलसी की गन्ध : मन मस्तिष्क पर छायी छवियाँ

रेणु के इन स्केचों में उनका गाँव भी है, सानोअमाँ (छोटी माँ) नेपाल भी और बंगाल का एक बड़ा परिदृश्य भी। रेणु हिन्दी के अलावा नेपाली और बंगला भी, हिन्दी की तरह ही लिख लेते थे। पर उन्होंने नेपाली और बंगला में लिखा बहुत ही कम, पर पढ़ा पूरा था। साथ ही रेणु उर्दू साहित्य से भी गहरा लगाव रखते थे। बालकृष्ण "सम", सुहैल अजीमाबादी, रवीन्द्रनाथ, हंग्री जेनेरेशन के कवियों एवं भादुड़ीजी पर लिखे स्केच इसके प्रमाण हैं।

रेणु के रेखाचित्रों का यह संग्रह "वन तुलसी की गन्ध" तीन खण्डों में विभाजित है इसके पहले खण्ड में यशपाल, अज्ञेय, अश्क, जैनेन्द्र, उग्र, काम और त्रिलोचन पर लिखे स्केच हैं। ये सभी रेणु से वरिष्ठ हिन्दी के लेखक हैं। दूसरे खण्ड में बालकृष्ण "सम" सुहैल अजीमाबादी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हंग्री जेनेरेशन के कवियों एवं सतीनाथ भादुड़ी पर लिखे स्केच हैं। ये क्रमश: नेपाली, उर्दू एवं बंगला के लेखक हैं। तीसरे

खण्ड में वे स्केच हैं जो साधारण पात्रों पर लिखे गये हैं ।

इन स्केचों के लेखक - रेणु कहीं पाठकराम हैं, तो कहीं राम-पाठक और कहीं दासानुदास । ये स्केच-लेखक के तीन रूप हैं । यानी, कहीं पाठक होने की हैसियत मात्र है, कहीं विशिष्ट पाठक होने की और कहीं अतिशय विनम्र, श्रद्धा से झुके दासों के भी अनुदास होने की । रेणु, इन स्केचों में, यही कारण है कि अत्यधिक सहज, विनम्र और भोले-पन के साथ उपस्थित होते हैं । कहीं बड़बोलापन नहीं । व्यर्थ उड़ान नहीं । अपनी विद्वता का आतंक प्रदर्शित करने का भाव नहीं ।

रेणु के इन स्केचों में उनके अपने व्यक्तिगत ढेर सारे संस्मरण हैं, जिनसे उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है एवं कई जगह उन्होंने अपनी विचारधारा को भी छुनकर इन स्केचों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । इस तरह इन स्केचों का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

सबसे पहले : "विषयान्तर" - इस संग्रह का पहला स्केच भिंगल मामा का स्केच होते हुए भी, रेणु के स्केच-विधा के रूप-रचाव, वस्तु विन्यास या बनावट के बारे में रेणु की स्थापना है । अत: इस स्केच को इस संग्रह की भूमिका के रूप में भी देखा जा सकता है ।

"भिंगल मामा कहते हैं - "स्पष्ट देख लो, विषय छोड़कर "विषयान्तर" में गया है । विषय है - पड़ोसी । जो, दो लड़ने वाले मुर्गे हैं । "विषयान्तर" ये हैं चूजे, यह बहंगीवाला ··· । सूखी झिंगुनी का स्पंज देखा है न ? ··· वैसा ही रेखाओं से बेकार इधर-उधर काम किया है । मगर "विषय" को जानने वाला ही "विषयान्तर" से अपने विषय को स्पष्ट करता है ।"

रेणु स्केच लिखते वक्त बार-बार "विषयान्तर" हो जाते हैं और विषयान्तर होकर ही अपनी बात को स्पष्ट करते हैं। यही कारण है कि त्रिलोचन पर "स्केच" लिखते वक्त वे अपने गाँव के कबिराहा बाबा के बारे में विस्तार से बताते हैं। दरअसल, वे त्रिलोचन में कबीर का व्यक्तित्व देखते हैं और उनकी परम्परा में पाते हैं। जैनेन्द्र पर स्केच लिखते वक्त देवदास-पार्वती और कवि शमशेर बहादुर सिंह का जिक्र ; अश्क के सन्दर्भ में भिंगल मामा का ; अज्ञेय के सन्दर्भ में मनोज बसु, सजनीकान्त दास, ताराशंकर आदि का जिक्र ; भूँगी जेनेरेशन के कवियों पर लिखते वक्त "कुमारसम्भवम्" की पंक्तियों का उद्धरण - ये सभी "विषयान्तर" हैं, किन्तु रेणु इन्हीं विषयान्तरों के द्वारा अपने विषय को स्पष्ट करते हैं।

तीन खण्डों में बँटे इस संग्रह के पहले दो खण्डों में रेणु ने हिन्दी उर्दू, बंगला और नेपाली के अपने से वरिष्ठ साहित्यकारों के रेखाचित्र खींचा है। इन सभी रेखाचित्रों में एक विवाद निरन्तर चलता रहता है, प्रमुख कौन है ? लेखक का व्यक्तिगत जीवन या उसका साहित्य। किसी साहित्यकार के बारे में राय कायम करनी हो तो आधार किसे बनाया जाय लेखक को या उसके साहित्य को। रेणु साहित्य को ही आधार बनाने के पक्ष में तर्क देते हैं अपने रेखाचित्र - यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र और उग्र में।

"यशपाल" रेखाचित्र की खास विशेषता है। रेणु ने यशपाल को पहले साहित्यकार के रूप में चित्रित किया है बाद में व्यक्ति रूप में - एक शान्त सौम्य निर्विकार व्यक्तित्व जो अपने साहित्य में विद्रोही

और क्रान्तिकारी है । यशपाल के विषय में रेणु कहते है "हिन्दी का यह कथाकार यशपाल वही यशपाल है यही मेरे लिए बहुत है ··· वह किसी अन्य भाषा में लिख सकता था, वह सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट, कांग्रेसी कुछ भी हो, साम्प्रदायिक दंगे तो नहीं करवा रहा अपनी लौह-लेखिनी से । "विप्लव" के बदले वह किसी धर्म का बिगुल भी निकाल सकता था ।"

"अज्ञेय" के सन्दर्भ में कहते है "महन्त, पादरी, डिक्टेटर, धूर्त, चतुर, चालाक, सब कुछ हो सकता है वह । किन्तु इससे ··· उसके कथाकार को छोटा कैसे मान लिया जाये ?"

"जैनेन्द्र" के सन्दर्भ में स्पष्ट कहते है "दासानुदास मानता है कि मनुष्य के वास्तविक चरित्र को, उसके समाज निर्दिष्ट आचार-व्यवहा से नहीं समझा जा सकता । समाज के बहुसख्यक लोगों के सुर-में-सुर मिलाकर वह जो राग अलापता है, इससे उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का कोई आभास नहीं मिलेगा । व्यक्ति के जीवन में जो बेसुरे राग (ओवरटोन) ध्वनित होते है, उसी में असली मनुष्य (आर्थेण्टिक इण्डिविज्वल) की झांकी मिलेगी । असल जैनेन्द्र को खोजने के लिए उसके बेसुरे राग को पकड़ना होगा ।

"उग्र" पर लिखते समय लिखते है — "चाकलेट" पढ़ चुका हूं । मैं कितने बड़े भ्रम में था कि उग्रजी को ··· आस्कर वाइल्ड समझता था । उग्रजी के दर्शन से दासानुदास अब तक वंचित है । लेकिन अब कोई पूछे तो सही-सही बता सकता हूं कि उग्रजी कहां है और क्या कर रहे है । और यह तो हलफ उठाकर कहा जा सकता है कि उग्रजी सम्पूर्ण स्वेण जीवित है । यह आग शीघ्र ही बुझ जाने वाली नहीं ।

"काम" पर आकर रेखाचित्रों का स्वरूप बदल जाता है और व्यक्ति प्रधान हो जाता है। इस रेखाचित्र में व्यक्तित्व का ही वर्णन है, साहित्यकार का बहुत कम।

"बालकृष्ण 'सम'" - एक अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार का रेखाचित्र है। रेणु शुरूआत करते हैं - सर्वश्रेष्ठ कहानीकार से और अन्त अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तित्व पर। इस रेखाचित्र के माध्यम से रेणु यह कहना चाहते हैं कि कला और साहित्य में पहुंच के लिए व्यवस्थित ज्ञान से अधिक रुचि, आस्था और अभ्यास महत्वपूर्ण है।

"सुहैल अजीमाबादी" का साहित्यकार से अधिक एक जागरूक इन्सान के रूप में चित्रण किया है। एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जो अपनी मानवता को हर कीमत पर बचाए रखता है। तब भी जब उसका सब कुछ लूट लिया जाता है।

"मानव रवीन्द्रनाथ" रेखाचित्र खींचते समय रेणु उनकी सम्पूर्ण छवि देखना चाहते हैं। "..... हम - अर्थात् बंगाली लोग ही रवीन्द्रनाथ को कितना-सा जानते हैं? रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा, नाट्य-निर्माण क्षमता, दार्शनिक चिन्तन-शक्ति, सार्वभौमिक धर्मानुभूति, औपन्यासिक अन्तर्दृष्टि, वैज्ञानिक कौतूहल सब कुछ मिलाकर उनका अखण्ड रूप हृदय और मन में आंकने की बात तो दूर जहां वे भारत तथा पृथ्वी के सभी कवियों को पीछे छोड़ गये हैं, उसका ही सम्पूर्ण परिचय कितने बंगालियों ने पाया है? ... हम सभी परम आनन्द से अन्धे का हाथी-दर्शन कर रहे हैं और जो अंग हमारे हाथ आता है, जरा टटोलकर चिल्लाते हैं - यही है, यही रवीन्द्रनाथ।" इसलिए रेणु कहते हैं — "क्या इन (व्यक्तिगत सम्पर्क-संवलित) रचनाओं को बाद देकर कवीन्द्र की समग्रमूर्ति (कवि की

भाषा में - मोट छबि ।) देखने को मिल सकती है ?" अर्थात कवि का व्यक्तिगत जीवन और उसका साहित्य दोनों को बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता है । कवि के मूल्यांकन के लिए दोनों बराबर महत्व रखते हैं ।

"राम पाठक की डायरी से" - में भी हंग्री जेनेरेसन के कवियों की "मोट छबि" ही देते हैं । यहाँ साहित्य और साहित्यकार में कोई फर्क नहीं है जो उनके साहित्य में है वही उनके जीवन में भी ।

"भादुड़ीजी" — भी एक ऐसे साहित्यकार का रेखाचित्र है जिसके जीवन और साहित्य में कोई फर्क नहीं । इसी कारण यहाँ भी रेणु भादुड़ी जी की सम्पूर्ण छवि देने की कोशिश करते हैं ।

समाज का अन्तरविरोध रेणु के रेखाचित्रों में है । इस अन्तर-विरोध वाले समाज में कोई इससे कैसे मुक्त हो सकता है ? इसी कारण कभी रेणु साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन से उसके साहित्य को अलग कर देखने की बात करते है तो कभी साहित्यकार और उसके साहित्य को पूरी तरह जानने के लिए व्यक्तिगत जीवन को देखने की माँग करने लगते हैं । सच तो यह है कि इस समाज में किसी के पास स्पष्ट दृष्टि नहीं, हो भी नहीं सकती । प्रत्येक व्यक्ति और साहित्यकार इस व्यवस्था के अन्तरविरोध में फंसा है और इससे उबरने की कोशिश कर रहा है । इन अन्तरविरोधों के बीच रेणु साहित्यकार का मानदण्ड खोजने की कोशिश करते हैं । उनकी यह खोज उनके जीवन और समाज से जुड़े होने का प्रमाण है ।

"मन के पर्दे पर" खण्ड में जो रेखाचित्र हैं वे बहुत ही जीवन्त है । इनमें एक सम्पूर्ण चित्र साकार हो उठता है केवल एक व्यक्ति का

नहीं वरण पूरे परिवेश का । "स्टिल लाइफ" में पूरे अस्पताल के जीवन का । "ईश्वर रे, मेरे बेचारे, "कुसुमलाल" और "जाहिदअली" में पूरे ग्रामीण परिवेश का ।

इस खण्ड में रेणु के उपन्यासों की तरह उनके रेखाचित्र में भी उनका पूरा अंचल अपनी तमाम खूबियों और खामियों के साथ जिन्दा है ।

.....

तृतीय अध्याय

रेणु की भाषा शैली

हिन्दी के सशक्त साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु अपने समकालीनों से लेकर नयी पीढ़ी के रचनाकारों के बीच अपनी साहित्यिक ऊर्जा के कारण चर्चित और लोकप्रिय रहे हैं। उनकी लोकप्रियता देश और समाज में उनकी सक्रिय भागेदारी के कारण ही रही है। वे एक ऐसे किसान लेखक थे, जिनकी रचनाओं में अपनी माटी की सोंधी गंध बरकरार है। अपनी माटी के अन्तरंग जुड़ाव के कारण ही उनके साहित्य में भाषा की नयी पहचान आयी है।

भावों और विचारों की सफलतम और सूक्ष्मतम अभिव्यंजना का सर्वाधिक सशक्त तथा व्यावहारिक माध्यम है भाषा। शब्द-संरचना की प्रथम अनिवार्य इकाई है। शब्दों के नियमबद्ध कुशल और सार्थक संयोजन से ही पदों और वाक्यों की रचना होती है जो मानवीय भावों और विचारों के समर्थ संवाहक बनकर भाषा का निर्माण करते हैं और हर प्रकार

को भाषिक अभिव्यक्ति के माध्यम बनते है । भाषा की इसी अभिव्यंजना शक्ति तथा भाषिक संरचना की विशिष्ट प्रविधि का नाम है शैली । किसी साहित्यिक कृति के सम्यक् विवेचन-विश्लेषण के लिए जिस प्रकार वस्तु और भाव-पक्ष का अध्ययन अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण होता है उसी प्रकार उसके भाषा-शैली पक्ष का अध्ययन अवलोकन भी ।

रेणु साहित्य की अन्य सारी उपलब्धियों और विशिष्टताओं के अतिरिक्त जिस एक सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि और विशिष्टता को सर्वसम्मत रूप से आलोचकों ने रेखांकित किया है वह है उनकी भाषिक संरचना-शिल्प । अछूते अंचलों के बहुआयामी जीवन-संदर्भों की संश्लिष्ट तथा सतरंगी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति एवं तेजी से बदलते हुए आंचलिक जीवन-परिवेश की गतिशील प्रक्रिया को पकड़ने में "रेणु" ने जब घिसी-पिटी परम्परागत साहित्यिक भाषा तथा उसके कोशीय शब्दों एवं मुहावरों को अक्षम और असमर्थ पाया तब उन्होंने अभिव्यक्ति के इस संकट का सामना करने के लिए संप्रेषण के नये-नये माध्यमों की तलाश-यात्रा शुरू की । इस तलाश-यात्रा का प्रथम चरण था भाषा के बासी साहित्यिक अभिजात्य से विद्रोह कर एक लोकधर्मी भाषा-संरचना का निर्माण । इस यात्रा का दूसरा चरण था भाषा की सम्पूर्ण संप्रेषण-क्षमता - अर्थवत्ता, सांकेतिकता, ध्वन्यात्मकता, व्यंजकता, प्रतीकात्मकता तथा बिम्बात्मकता आदि का नये-नये जीवन संदर्भों में प्रयोग । यात्रा के तीसरे पड़ाव पर "रेणु" को लोक-भाषा या जन-भाषा के उस अक्षय भंडार का पता लग गया जिसमें अभिव्यक्ति की असीम क्षमता वाले एक से बढ़कर एक सशक्त उपकरण लोक-गीतों, लोक कथाओं, लोकोक्तियों, मुहावरों और जनपदीय शब्दों के रूप में जगमगा रहे थे ।

साहित्य जब अभिव्यक्ति संकट एवं जीवन ऊर्जा के अभाव के दौड़ से गुजरने लगता है तब उसे लोक-भाषा और लोक-संस्कृति के सामने दामन फैलाना पड़ता है। लोक-जीवन तथा लोक-चेतना की अविकल-निर्व्याज अभिव्यक्ति के लिए प्रतिबद्ध "रेणु" ने भी अभिव्यक्ति के संकट को पार करने के लिए लोक भाषा का दामन पकड़ा।

ध्वनि की चर्चा अभी तक सीमित रूप में ही हो पायी है। भाषा की एक इकाई के रूप में यह भाषा-विज्ञान, व्यंजना के रूप में काव्यशास्त्र और नाद के रूप में संगीतशास्त्र, भाषा-विज्ञान एवं संगीत के अन्तर्गत अध्ययन की जाती है। काव्य भाषा बहुत पहले से सर्जनात्मकता के स्तर पर दृश्यांकन की क्षमता दी है और नादात्मकता के स्तर पर संगीत की अनुगूंज। काव्यभाषा द्वारा इसकी सर्जनात्मकता का उद्घाटन होने के बावजूद गद्य-भाषा व्यापक स्तर पर इसका प्रयोग नहीं कर पायी। निबन्ध, रिपोर्ताज एवं नाटक की बात तो दूर सर्जनात्मकता का संकल्प लेकर चलने वाली कथा-भाषा भी इस अर्थ में निरचेस्ट-सी रही है। इस अर्थ में "रेणु" अग्रणी हैं। उन्होंने न केवल अपने उपन्यासों में वरन् अपने रिपोर्ताजों में भी ध्वनि का सर्जनात्मक प्रयोग किया है। रेणु बन्दूक या तोप से निकले गोली-गोलों के शब्दों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं :

"फड़र्रर - र्र - र्र - र्र ··· ।
गुड़म गुड़क ··· धांय - धांय ।।
ट ट ट ट ट ट ट । ट ट ट ट ट ट ट ट ट
ठाँठाँय, ठाँय ठाँय - ठाँय - ठाँय"

(नेपाली क्रान्ति-कथा)

ध्वनि चित्रात्मक वर्णन में ही "रेणु" की भाषा की सारी रसायन शक्ति प्रकट हो गयी है।

"अरे दुर साला। कांदछिस केनो ? ... रोता क्यों है। बाहर देख। साले। तुम लोग थोड़ी-सी मस्ती में जब चाहो तब राह चलते "कमर दुलिये-दुलिये" (कमर लचकाकर, कूल्हे मटकाकर) ट्वीस्ट नाच सकते हो। रम्बा-सम्बा-हीरा-टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और बृहत सर्वग्राही महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति कभी नहीं नाचेगी ? ... ए-बार नाच देख। भयंकरी नाच रही है - ता-ता-थेई-थेई, ता-ता-थेई-थेई। तीव्रा तीव्र वेगा। शिवनर्तकी गीतप्रिया वाधरता प्रेत नृत्यपरायणा नाच रही है। जा, तू भी नाच।"

अगरबत्ती जलाकर, शंख फूंकता हूँ - नाचो मां। ... उलंगिनी नाचे रणरंगे, आमरा नृत्य करि संगे। ता - ता - थेई - थेई, ता - ता थेई - थेई ... मदमत्ता मातंगिनी उलंगिनी - जी भरकर नाचो।

(ऋणजल धनजल)

केवल लोकगीतों और सार्थक आंचलिक शब्दों से ही नहीं, निरर्थक सी लगने वाली वाद्य-ध्वनियों और पशु-पक्षियों की बोलियों से भी गहरे अर्थ संकेत ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता "रेणु" में है। वह रेल की सीटी, ढोलक की ध्वनियों, कुत्ते की बोलियों, गोली और तोप की आवाजों से भी मानवीय संवेदना का तारतम्य स्थापित करते हुए दिखाई देते हैं।

"बाहर कलरव-कोलाहल बढ़ता ही जाता है। मोटर, ट्रक, ट्रैक्टर, स्कूटर पानी की धारा को चीरती, गरजती-गुर्राती गुजरती

है ••• सुबह सात बजे ही धूप इतनी तीखी हो गयी ? साँस लेने में कठिनाई हो रही है। सम्भवतः ऐसी घड़ी में वातावरण में ऑक्सिजन की कमी हो जाती है। उमस, पसीना, कम्पन, धड़कन ? तो, क्या ••• तो क्या ?

अब, तुमुल तरंगिनी के तरल नृत्य और वाद्य की ध्वनियों को शब्दों में बांधना असम्भव है। अब ••• अब ••• सिर्फ ••• हिल्लोल-कल्लोल-कलकल कुलकुल-छहर-झहर-झहर-झरझर-अर, र र र है - ए - ए धिन्ना-धिन्ना - धातिन-धा तिनधा-आ-आ हं-मैया-गे-झाँय-झाँय-झा-झा-झाँय झिझिना-झिझिना कलल कुलल - कुल कुल - बाँ - आँ - य बाँ - आँ - म - भौं - ऊँ - ऊँ ••• चैंई-चैंई - छछना - छछना - हा - हा - हा ततथा - ततथा - कलकल - कुलकुल ••• ।।

पानी बढ़ना रुक गया है ? ऐं, रुक गया है ? बीस मिनट हो गये। पानी जस-का-तस, जहाँ-का-तहाँ है ? कम-से-कम अभी तो रुक गया है।

••• उ-ऊ-ऊ-ऊ। फिर मैंने शंखध्वनि की ? नहीं। रेलवे - लाइन पर एक इंजन तार स्वर में चीख रहा है - उ-ऊ-ऊ-ऊ-ऊ।

(ऋणजल धनजल)

रेणु साहित्य में हिन्दी के व्यवहार के साथ-साथ व्यक्ति विशेष की विशेष लोक-भाषा या बोली के व्यवहार की जो यथार्थता है वह उनके रिपोर्ताजों में भी मौजूद है। अपने कथा-साहित्य में भाषागत आंचलिकता के पुट के आदि "रेणु" ने यहाँ भी अपनी प्रकृति को बरकरार रखा है। "नेपाली क्रान्ति-कथा" में वहीं लोक भाषा का एक आध

शब्द है और कहीं एक-आध वाक्य । ऐसे शब्द या वाक्य या तो मैथिली के है या नेपाली के, क्योंकि मोर्चे के ज्यादातर सशस्त्र सैनिक इसी बोली या भाषा के अंचल के है । ऐसी बोली या भाषा से व्यवहार द्वारा किसी व्यक्ति की आवेगभरी आंचलिकता उभर कर आती है । हमारा भावावेग हमें बड़े सहज भाव से अपनी निजी बोली या भाषा के व्यवहार के लिए बाध्य कर देता है ।

जोगबनी के भावुक गुरुजी फेंकन चौधरी शुरू से ही कोईराला परिवार के भक्त और नेपाली कांग्रेस के सक्रिय-सहायक है । गेरिलों ने "जय नेपाल" कहकर मार्च किया तो आप भी निहत्थे साथ चल पड़े । टुकड़ी के संचालक भोला चैटर्जी ने आपत्ति की - "सुफेद खादी की धोती और सुफेद गांधी टोपी ? घने अंधकार में भी गोली ठीक आपके सिर में लगेगी ।" किन्तु गुरुजी ने मैथिली-भाषा में ही कहा - "जब गोलिये खाये लेल जायत घी त फेर माथ में लागांक चाहे पैर में - एक्के बात ···"

मालखाना में समस्या खड़ी हुई - राइफल तो दो-दो या तीन-तीन भी लटकायी जा सकती है, कंधे से, किन्तु इतने बुलेट ? कोई बोरी या झोली भी नहीं - "अब कसरी कै गर्न ··· कैसे क्या हो ?"

"हे - हे लियौ, समस्याक समाधान ।" कहकर गुरुजी ने अपनी धोती खोल दी "बांधिए गठरी । इससे भी नहीं हो तो लीजिये, इस कुर्ते का झोला बना देता हूं ।"

(नेपाली क्रान्ति-कथा)

"रेणु" के संस्मरणों और रिपोर्ताजों में लोक-भाषा या जन-भाषा के शब्दों, वाक्यों, कहावतों आदि का प्रयोग तो विपुल मात्रा में हुआ ही

है लोक गीतों और लोक कथाओं से भी भरा पड़ा है । इन प्रयोगों की वास्तविक सार्थकता लोक-मानस की चिन्तन और अभिव्यक्ति प्रक्रिया के अक्लिष्ट-अकृत्रिम प्रस्तुतीकरण में है ।

"बचपन से "बाढ़" शब्द सुनते ही विगलित होने और बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में जाकर काम करने की अदम्य प्रवृत्ति के पीछे - "सावन-भादों" नामक एक करुण ग्राम्य गीत है, जिसे मेरी बड़ी बहिन अपनी सहेलियों के साथ सावन-भादों के महीने में गाया करती थी । आषाढ़ चढ़ते ही - ससुराल में नयी बसने वाली बेटी को नैहर बुला लिया जाता है । मेरा अनुमान है कि सारे उत्तर बिहार में नव-विवाहित बेटियों को "सावन-भादों के समय नैहर से बुलावा आ जाता है ··· और जिसको कोई लिवाने नहीं जाता, वह बेचारी दिन-भर नैहर की याद में आँसुओं की वर्षा में भीगती रहती है । "सावन-भादों" गीत में ऐसी ही, ससुराल में नयी बसने वाली कन्या की करुण कहानी है :

"कासी फूटल कसामल रे दैबा
बाबा मोरा सुधियो न लेल,
बाबा भेल निरमोहिया रे दैबा
भैया के भेजियो न देल,
भैया भेल कचहरिया रे दैबा
भउजी बिसरि कइसे गेल ··· ?"

§अब तो चारों ओर कास भी फूल गये यानी वर्षा का मौसम बीतने को है । पिछली बार तो बाबा खुद आये थे । इस बार बाबा ने सुधि नहीं ली । बाबा अब निर्मोही हो गये हैं । भैया को "जमीन-जगह" के मामले में हमेशा कचहरी में रहना पड़ता है । लेकिन, मेरी प्यारी भाभी मुझे कैसे भूल गयी ?§

भाभी भूली नहीं थीं, उसने अपने पति को ताने देकर बुलाने के लिए भेजा । भाई अपनी बहिन को लिवाने गया ··· इसके बाद गीत की धुन बदल जाती है । कल तक रोनेवाली बहुरिया प्रसन्न होकर ननदों और सहेलियों से कहती है :

"हाँ रे सुन सखिया । साक्न-भादव केर उमड़ल नदिया
भैया अइले बहिनी बोलावे ले - सुन सखिया ···"

ओ ननद-सखी । साक्न-भादों की नदी उमड़ी हुई है । फिर भी मेरे भैया मुझे बुलाने आये हैं । तुम जरा सासजी से पैरवी कर दो कि मुझे जल्दी विदा कर दें ··· सास कहती है, मैं नहीं जानती अपने ससुर से कहो । ससुर ताने देकर कहता है कि नदी वाले इलाके में बेटी की शादी के बाद दहेज में नाव क्यों नहीं दिया । अन्त में, पतिदेव कुछ शर्तों के साथ विदा करने को राजी होते हैं । ससुराल की दुखिया-दुलहिन हँसी-खुशी से भाई के साथ मायके की ओर विदा होती है । लेकिन, नदी के घाट पर आकर देखा - कहीं कोई नाव नहीं । अब क्या करें । भाई ने हिम्मत से काम लिया । कास-कुश काटकर, मूँज की डोरी बनाकर और केले के पौधों के तने का एक "बेड़ा" बनाया और उस पर सवार होकर भाई-बहिन उमड़ी हुई कोशी की धारा को पार करने लगे । किन्तु, बीच नदी में पहुँचते ही लहरें तेज हो गयीं । बेड़ा डगमग करने लगा और, आखिर :

"कटि गेल कासी-कुशी छितरी गेल थम्हवा
खुलि गेल मूँज केर डोरिया - रे सुन सखिया ।
··· बीचहि नादिया में अइले हिलोरवा
छुटि गेलै भैया केर बहियाँ - रे सुन सखिया ।
··· डूबी गेलै भैया केर बेड़वा —
रे सुन सखिया ।।"

§नदी के उत्ताल तरंगों और धूर्णिचक्र में फँसकर बेड़ा टूट गया । भाई का हाथ छूट गया । और, भाई का बेड़ा डूब गया । भाई ने तैरकर बहिन को बचाने की चेष्टा की, किन्तु, तेज धारा में असफल रहा । डूबती हुई बहिन ने अपना अन्तिम सन्देशा दिया - माँ के नाम, बाप के नाम ··· फिर किसी बेटी को सावन-भादों के समय नैहर बुलाने में कभी कोई देरी नहीं करे । और, देरी हो जाये तो जामुन का पेड़ कटवाकर नाव बनवाये और तभी लड़की को लिवाने भेजे ।§

§मृणाल धनजल§

"रेणु" के भीतर का सर्जक कलाकार इतना अधिक सजग और संवेदनशील है कि वह किसी शब्द या ध्वनि के सामान्य अर्थ से ही संतुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि उसकी चित्रात्मक और संकेतात्मक आंतरिक क्षमता का भी प्रयोग करना चाहता है । इसीलिए वह किसी पात्र के रोने, हँसने, तुतलाने या हकलाने का मात्र उल्लेख करके ही नहीं रह जाता, बल्कि इन विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण की पूरी प्रक्रिया का चित्र ही उपस्थित कर देता है । वह शब्द की ध्वनि पकड़ता है और फिर ध्वनियों से बिम्बों का निर्माण कर जीवन के संश्लिष्ट यथार्थ को स्थापित करता है । यह एक सशक्त रिपोर्ताज लेखक की पहचान है ।

"मल्हूराम जी की अवस्था चिन्ताजनक है । राइफलों की आवाज को वे "बम" गिरने की आवाज समझ रहे हैं और जब तोप दहाड़ती है तो उन्हें लगता है, बाजार का एक-एक कोना उड़कर आसमान में चक्कर काट रहा है । उनका मुँह खुला हुआ है - जबड़े बैठ नहीं रहे हैं । पहली ही "फाइरिंग" की आवाज सुनकर उनका मुँह खुला सो खुला

ही रह गया । खुले हुए जबड़े के कारण वे कुछ भी स्पष्ट उच्चारण नहीं कर पाते हैं - पय्य, पय्य — अर्थात् प्रलय । प्रलयकाल उपस्थित है ··· लेकिन, तिजोरी छोड़कर वे कहीं नहीं जा सकते हैं । वे चल-फिर सकते हैं । तिजोरी को देखकर उनको लकवा मार जाता है - रुपये, जेवर, सोना ····· वह लाचार है ।

(नेपाली क्रान्ति-कथा)

"रेणु" के साहित्य में आंचलिक, तद्भव और देशी शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका है । अंचल के जीवन, रीतिरिवाज, संस्कृति, सभ्यता की अभिव्यक्ति इनसे ही होती है । इतना ही महत्वपूर्ण है जीवन-पद्धति सोचने का ढंग । जीवन की ताजगी, समाज और व्यक्ति की मनःस्थिति बिना ठेठ शब्दों के व्यक्त नहीं हो सकती । यही कारण है कि "रेणु" ने अपने रिपोर्ताजों में जगह-जगह इन शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है । "रेणु" का शब्दों पर विशेष अधिकार है । ध्वनियों को पकड़ने की अपनी अद्भुत क्षमता के बावजूद वे बड़ी संख्या में लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं । तत्सम शब्दों में नागर अर्थ - अभिव्यक्ति की क्षमता है जबकि तद्भव और देशज शब्द ग्राम-जीवन को अधिक व्यक्त करते हैं । इस प्रयोग द्वारा स्वाभाविकता की रक्षा अधिक होती है । रेणु ठेठ के साथ-साथ ध्वन्यात्मकता को भी पकड़ते हैं ।

"··· 1949, उस बार महानन्दा की बाढ़ से घिरे बापसी थाना के एक गाँव में हम पहुँचे । हमारी नाव पर रिलीफ के डाक्टर साहब थे । गाँव के कई बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैम्प में ले जाना था । एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी "कुँई-कुँई" करता हुआ नाव पर चढ़ आया । डाक्टर साहब कुत्ते को देखकर "भीषण भयभीत"

हो गये और चिल्लाने लगे — "आ रे । कुकुर नहीं, कुकुर नहीं ... कुकुर को भगाओ ।" बीमार नौजवान छप से पानी में उतर गया - "हमारा कुकुर नहीं जायेगा तो हम हुं नहीं जायेगा ।" फिर कुत्ता भी छपाक् पानी में गिरा - "हमारा आदमी नहीं जायेगा तो हम हुं नहीं जायेगा" ... परमान नदी की बाढ़ में डूबे हुए एक "मुसहरी" {मुसहरों की बस्ती} में हम राहत बाँटने गये । खबर मिली थी वे कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसाकर खा रहे हैं । किसी तरह जी रहे हैं । किन्तु टोले के पास जब हम पहुँचे तो ढोलक और मंजीरा की आवाज सुनायी पड़ी । जाकर देखा, एक ऊँची जगह "मचान" बनाकर स्टेज की तरह बनाया गया है । "बलवाही" नाच हो रहा था । लाल साड़ी पहनकर काला-कलूटा "नटुआ" दुलिहन का हाव-भाव दिखला रहा था; यानी वह "धानी" है । धरनी" धानी घर छोड़कर मायके भागी जा रही है और उसका घरवाला {पुरुष} उसको मनाकर राह से लौटाने गया है । घरनी कहती है - "तुम्हारी बहन की जुबान बड़ी तेज है । दिन-रात खराब गाली बकती रहती है और तुम्हारी बुढ़िया माँ बात के पहले तमाचा मारती है । मैं तुम्हारे घर लौटकर नहीं जाती ।" तब घरवाला उससे कहता है, यानी गा-गाकर समझाता है - "चल गे धानी घर घुरी, बहिनिक देवै टाँग तोड़ी धानी गे बुढ़िया के करवै घर से बा - हा - र {ओ धानी, घर लौट चलो बहन के पैर तोड़ दूँगा और बुढ़िया को घर से बाहर निकाल दूँगा ।} इस पद के साथ ही ढोलक पर द्रुत ताल बजने लगा - "धगिड़ गिड़ धागिड़ गिड़ - चकैके चकधुम चकैके चकधुम - चकधुम चकधुम ।"

{मृगजल धनजल}

कभी-कभी "रेणु" के जागृत लेखक पर उनका भावुक कवि हावी हो जाता है और भावावेश की विशिष्ट मनोभूमि में पहुंचकर वह गद्य काव्य की सृष्टि करने लगते है ।

"कुहरा-कुहरा चारो ओर व्याप्त । सूरज उगने के दो घंटा बाद भी कुहरा छंटा नहीं । तराई की हरियाली पर गहरा सफेद आवरण । और सुबह चलने वाली पहाड़ी हवा के साथ शीत लहरी । इस पार से उस पार तक दृष्टिपथ को घेर कर रखने वाले सफेद आवरण पर कहीं कोई धब्बा नहीं ।"

(नेपाली क्रान्ति-कथा)

"रेणु" गाते हुए गद्य के रचनाकार थे । "रेणु" कर्म से कवि नहीं थे हालाँकि यह भी सत्य है कि वे जब तब कविताएं लिख लिया करते थे । जब पूरा अंचल गा उठे वैसे में भला "रेणु" कैसे चुप रह सकते थे ।

"मेरे प्यारे गैबी ··· हाँ, यह मेरे मुर्गे का नाम है । रोड्स जाति का है । बड़ा अक्खड़, बड़ा लड़ाका । मेरे प्यारे ग़ैबी पर भी सिन्दूरी जादू चल गया है मानो । अस्वाभाविक ढंग से चकित होकर बार-बार इधर-उधर देखता है, अस्त चुड़ा चमकाकर नाचता है, बाँग देता है ··· जन्मजात "लेफ्टिस्ट" है मेरा ग़ैबी । बाँग जब देने लगता है तो लगता है, कम्बख्त नारे लगा रहा है ··· नारे से बेहद चिढ़ते हैं कुछ लोग । ··· चुप रहो प्यारे । वर्ना कभी ज़िबह कर दिये जाओगे । ··· और ये छोटी-छोटी देशी मुर्गियाँ भी विनायती बोल बोलती हैं, जब ग़ैबी नारा लगाता है । ··· ग़ैबी का क्या दोष ? ··· सेमल को फूलते देखकर हवा भी बावरी हो गयी है । ··· चक्की पीसती हुई लड़कियाँ गाती है ··· "सेमली के बगिया अगिया लागी ··· रही ।

ग़ैबी ने आसमान सिर पर उठा लिया है । उसका क्या क़सूर ? मेरी भी कविता करने की इच्छा हो रही है -

"लाल-लाल फूल से भरे
हज़ारों हाथ आस्मां में उठाये
हम खड़े हैं
काल पर्दे के पार बेबस
ओ ! नये युग की पहली सुबह,
रात के क़िले में क़ैद नये आफ़्ताब सुनो ।
हम तुम्हें आजाद करने आये हैं ।"

§एकलव्य के नोट्स - श्रुत अश्रुत पूर्व§

लोक-गीतों की आधी-पूरी पंक्ति द्वारा अपने पात्रों के हृदय में छिपे आशा-उत्साह की निगूढ़ अनुभूतियों को वाणी देने की कला में रेणु बेजोड़ है । यह भाव-बोध की अभिव्यक्ति और वातावरण-निर्माण में बहुत ही समर्थ और कारगर प्रमाणित हुई है ।

"मुक्ति सेना की पहली टुकड़ी, रात के सन्नाटे में तराई में, नदी-नाले और उबड़-खाबड़ खेतों को लांघती हुई, विराटनगर शहर की ओर बढ़ी । गेरिलायुद्ध का श्रीगणेश हुआ । टुकड़ी के सभी मुक्ति सैनिकों के मन में फ़ौजी बैंड के ताल पर एक ही गीत गूँज रहा है - नेपाली । नेपाली ।। आगि बढ़दै - बढ़दै जाऊ-क्रांति झण्डा ले ··· ड्रम - ड्रम - ड्रम ।

§नेपाली क्रान्ति-कथा§

रेणु बिन्दुओं और डैशों से बहुत काम लेते हैं । लगता है यह उनके गद्य का विशिष्ट पद क्षेप है ।

"ताज़े का फैसला कानूनगो साहब करेंगे । इनको बहुत "पावर" है । अभी अमीन और सुपरवाइजर इनके "अण्डर" में रहते है । ··· पाँच महीने तक "ताजा" का फैसला होगा । ··· सबों ने पाट बेचकर पैसे जमा कर रखे है, क्या जाने कब समये को जरूरत पड़ जाये । ··· दिन-रात कचहरी लगी रहती है कानूनगो साहब की । कानूनगो के "चपरासीजी" को इलाके के बड़े-से-बड़े ज़मीनवाले हाथ उठाकर - "जय-हिन्द" करते है - "जयहिन्द चपरासीजी । ··· कहिए, कानूनगो साहब को "चावल" पसन्द आया ? असली बासमती चावल है, अपने खर्च के लिए घर में था । ··· जी - जी-हाँ । ··· घी आज आ जायेगा ।"

(एकलव्य के नोट्स - श्रुत अश्रुत पूर्व)

रेणु के गद्य के आस्वाद के लिए एक विशिष्ट मानसिकता और संस्कार चाहिए । अपने अंचल या प्रान्त से गहराई से जुड़ाव चाहिए । आम आदमी, उसकी समस्या और परेशानी को पहचानने की रेणु माँग करते है ।

"इसी बीच एक अधेड़ मुस्टण्ड और गँवार ज़ोर-ज़ोर से बोल उठा - "ईह । जब दानापुर डूब रहा था तो पटनिया बाबू लोग उलट कर देखने भी नहीं गये ··· अब बूझो ।" "

मैंने अपने आचार्य-कवि मित्र से कहा - "पहचान लीजिए । यही है वह "आम आदमी" जिसकी खोज हर साहित्यिक गोष्ठियों में होती रहती है । उसके वक्तव्य में "दानापुर" के बदले "उत्तर बिहार" अथवा कोई भी बाढ़-ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र जोड़ दीजिए ··· "

(अंजल धनजल)

भाषिक संरचना के इतने विविध आयाम, लोक गीतों, लोक-कथाओं, देशज शब्दों, कहावतों और लोकोक्तियों आदि का इतना विपुल प्रयोग तथा भिन्न-भिन्न ध्वनियों के विशाल स्वर-संघट्टन के द्वारा एक विविधापूर्ण विशाल भाषा-संसार की सृष्टि करके भी "रेणु" ने बड़ी कुशलता से अपनी इस भाषिक संरचना को बोझिल कृत्रिम, अस्वाभाविक तथा क्लिष्ट होने से बचा लिया है। यही इनके भाषिक संरचना शिल्प की सबसे बड़ी उपलब्धि भी है और विशेषता भी। "रेणु" के भाषा शिल्प के सम्बन्ध में डा॰ धनंजय वर्मा की इस स्थापना से शायद ही कोई असहमत हो सके कि "भाषा में एक अकृत्रिमता है ··· फिर भी वह असाहित्यिक नहीं। सर्वत्र भाषा का सौष्ठव है और अपनी परिनिष्ठा से स्खलित वह नहीं हुई है। गद्य की भाषा का यह परिष्कार है, उसकी शक्ति का विस्तार है ··· जन भाषा के प्रयोग में यह प्रेमचन्द के आगे का चरण है।"

(आलोचना पूर्णांक 24)

केवल भाषा और उसकी भंगिमा को लेकर भी यह परख की जा सकती है कि किसी रचनाकार ने जीवन और साहित्य में कहाँ क्या जोड़ा है। साहित्य में भाषा एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है, किसी भी साहित्य के मूल्यांकन का महत्वपूर्ण आधार। जैसा कि प्रेमचन्द कहते हैं - "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होती है जब उसमें जीवन की सचाइयाँ

और अनुभूतियाँ व्याप्त की गयी हों ।

(साहित्य का उद्देश्य)

रेणु इस दृष्टि से एक समर्थ और उससे भी अधिक सम्भावनापूर्ण लेखक दीख पड़ते है ।

.....

चतुर्थ अध्याय

"रेणु" के रेखाचित्रों, संस्मरणों और रिपोर्ताजों में व्यक्त लेखक की जीवन-दृष्टि और विचारधारा

"रेणु" अपने रचनात्मक साहित्य में अनुभव, लगाव, संवेदन, चित्रण और जीवन्तता के बावजूद अपनी मान्यताओं की पहचान और प्रामाणिकता के विषय में विवादास्पद रहे हैं। इसलिए ये विसंगतियाँ विश्लेषण की ऐसी सूक्ष्मता की माँग करती हैं जो रचनाकार के जीवन, सिद्धांत, रचना और संवेदना के पारस्परिक अलगाव को समझते हुए भी उस अंश को समायित और चिन्हित करे जो विकास-क्रम के ऊर्ध्वोन्मुखी गतिशील तत्वों को उजागर करने में सहायक होता है। यदि किसी कलाकार का मात्र एक ही अंश विकास की रचनात्मक भूमिका निभाता है, तो उसका विश्लेषण ऐतिहासिक सन्दर्भ के लिए आवश्यक हो जाता है।

"रेणु" की मान्यताएँ क्या थीं ? गांधीवादी, समाजवादी, समन्वयवादी, आदर्शवादी या वैयक्तिक - विभिन्न परिभाषाओं में उनके साहित्य का निष्कर्ष विश्लेषित हुआ है। वस्तुत: "रेणु" का साहित्य-सिद्धांत और रचना के टकराव, उनकी पारस्परिक विसंगतियों, द्वन्द्व, निषेधपरक आयामों और उलझावों में इतना कसा हुआ है (रेणु की श्रेठ कहानियाँ, सं॰- कमलेश्वर) कि उसकी तलाश के लिए काफी हद तक छानबीन की प्रक्रिया से गुजरना जरूरी है।

"रेणु" का सबसे कमजोर पक्ष, उनका सिद्धांत के प्रति एक अस्पष्ट दृष्टिकोण अपनाना है मानो सैद्धांतिक दृष्टि को रचनाकार का नहीं वरन् आलोचक का कार्य-व्यापार समझकर उसे दरकिनार रखने का रवैया अपनाना है। "रेणु" का मानना था कि रचनाकार का सरोकार जीवन की गहराइयों में छिपे जीवन के गहरे दर्शन, चिन्तन और विचार को खोजने का नहीं, वरन् जीवन की गहराइयों में छिपी स्थितियों, चरित्रों और उदात्त घटनाओं को खोजकर उन्हें एक व्यापक फलक पर चित्रित करने से है। पृथक सत्ता की इस अवधारणा की भ्रान्ति के कारण हमें "रेणु" की मान्यताओं की खोज उनके सिद्धान्त में नहीं, उनकी रचना में करना होगा और इस क्रम में उनके सिद्धांत और रचनापक्ष - दोनों को एक-दूसरे से पृथक कर, केवल रचना-पक्ष का ही विश्लेषण करना अपेक्षित होगा।

बाल्जक, मोपासां, टाल्सटाय आदि में भी रचना और सिद्धांत का अन्तर इतना विषाद देखा गया है कि वस्तुत: दोनों एक-दूसरे के प्रतिकूल लगते हैं। बाल्जक सिद्धान्त के मामले में पूँजीवादी

संस्कारों से ग्रस्त और पूंजीवादी विचारों के हिमायती थे, किन्तु उनकी रचना में पूंजीवादी समाज की विकृतियों की कड़ी आलोचना मिलती है और वह पूंजीवाद के उभार से उत्पन्न सभ्यता के नंगेपन को उधेड़कर अपनी रचना में रख देते है । उसी प्रकार टालस्टाय का उदाहरण है । टाल्सटाय सैद्धान्तिक दृष्टि से आदर्शवादी थे, किन्तु उनकी रचना ने क्रान्ति की वह भूमिका निभायी जिसके आधार पर आदर्शवाद का भरा-पूरा महल ही विनष्ट हो गया । इतिहास के विकास क्रम में ऐसा आवश्यक नहीं होता कि रचना पूर्णत: सिद्धान्त का अनुकरण करे ही । कई बार लेखकों का साहित्य, सिद्धान्त और रचना के स्तर पर परस्पर विरोधी होकर भी अपने यथार्थबोध के कारण महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर पाया है । इनके साहित्य में वस्तुपरकता, संवेदनीयता, सामान्य जन-जीवन का चित्रण, युग जीवन, दु:खी जीवन के प्रति पीड़ा, व्यवस्था की विकृतियों का उद्घाटन, इन विकृतियों का पोषण करने वाले सुविधा-भोगी वर्गों के प्रति कठोर प्रहार, परिवेश के आक्रान्तकारी स्वरूप के प्रति उत्कट असन्तोष, सामाजिक निष्ठा, सजीव और सप्राण मानव चरित्र-चित्रण, महाकाव्यात्मक औदात्य दृष्टिकोण तथा चित्रण अपनी जीवन्तता में उपलब्ध है ।

"रेणु" भी मूलत: आलोचक नहीं रचनात्मक साहित्य के लेखक है । ऐसी स्थिति में यदि वे आदर्शवाद, संशोधनवाद, समन्वयवाद और समाजवाद के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींच पाये है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उनका सारा साहित्य निरर्थक और मान्यताओं से शून्य है । एक बुनियादी कमजोरी से ग्रस्त होते हुए भी उन्होंने जिस साहित्य का सृजन किया उसकी सर्जनात्मक भूमिका की सार्थकता पर गौर

किया जाना चाहिए क्योंकि यदि उसमें सार्थक यथार्थ मूल्यों के बीज और स्वप्न मिलते हैं, तो उसका महत्व है ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में "रेणु" ने एक सिलसिले से जब अपनी साहित्यिक यात्रा आरम्भ की तब व्यक्तिवादी अवधारणाओं का आन्दोलन अपने उभार पर था । (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र) मनोवैज्ञानिक वस्तुविरोध, अभिजात्य वर्गीय वैषम्य-पोषण, पुनरुत्थान कलावाद, नागरी संवेदनात्मकता, समवादी साहित्य-दर्शन बहिरंगी मानववाद जैसी अनेक अवरोधात्मक विचारधाराएँ जीवन के व्यापक यथार्थ को ढंकने के लिए सक्रिय थीं । (मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष) प्रमुख जीवनाधारों की नकारात्मक और क्षुद्र तथा नगण्य जीवनमूल्यों की स्वीकारात्मक विवेचना की जा रही थी जो आचार्य शुक्ल और प्रेमचन्द की परम्परा के लिए एक महान चुनौती थी । ऐसे ही साहित्यान्दोलन के काल में रेणु ने "मैला आँचल जैसा यथार्थपरक, लोक ज्ञानबद्ध, जन-संवेदनशील उपन्यास लिखकर आलोचकों, लेखकों और पाठकों को एक झटका दिया । इसलिए एक विशेष प्रसंग में उनके साहित्य का साहसिक आरम्भ इतिहास सापेक्ष होकर प्रासंगिक और अनेक अर्थों में विचारणीय बन गया है ।

"रेणु" ने ग्रामीण अंचल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक दशाओं का जितना सूक्ष्म और विराट चित्रण किया है, गाँवों की समस्याओं को औदात्य प्रदान करने में जितनी अनुभूति और ज्ञान की प्रामाणिकता का संकेत प्रस्तुत किया है उससे उनकी वस्तुपरकता, समाजनिष्ठा तथा यथार्थ-ज्ञान के प्रति आस्था की सहज अभिव्यक्ति होती है । उनके साहित्य में ग्रामीण अंचल की जागरूक और अधकचरी

राजनीतिक चेतना, सचेत और पिछड़ी सामाजिक मनोदशा, अमीरी और गरीबी तथा शोषण और मुक्ति की वैचारिक भावना, व्यवस्था के दमन और उत्पीड़न से आक्रान्त सामाजिकता अपने अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और समस्यागत द्वन्दों के साथ चित्रित हुई है। इस चित्रण की प्रमुख प्रेरणा उनकी रचना के स्तर पर गृहीत वस्तुनिष्ठता ही है। जो शिल्प, चरित्रांकन, घटना-क्रम को अपने अनुकूल ढालती हुई उन्हें स्वाभाविकता, संवेदनीयता, सम्प्रेषणीयता, प्रवहमानता और विकास की परिणति तक ले जाती है। वस्तुपरकता के अभाव में इतना सूक्ष्म और विशद चित्रांकन, जिसमें समस्त अंचल का रग-रग साफ-साफ दिख जाए और उसकी पारदर्शिता स्वतः अपनी ओर आकर्षित करने लगे, सम्भव हो ही नहीं सकता।

"रेणु" का साध्य व्यक्तिनिष्ठ अभिजात्य संस्कृति नहीं थी। वह सामाजिक सामान्य जन-जीवन को अपना साध्य मानते हैं और एक वस्तुनिष्ठ यथार्थजीवी रचनाकार के लिए महत्तर लोक-जीवन ही प्राथमिक महत्व और मूल्य के रूप में स्वीकार्य होता है। आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टियों से पिछड़ा हुआ लोक-जीवन यथार्थवादी लेखक को इसलिए प्रभावित करता है कि वह उसके बाहरी और भीतरी सोपानों का सिंहावलोकन कर, उसकी समस्त छिपी हुई समस्याओं को उद्दीप्त कर सके और उनके मार्मिक बोध से उनके समाधान का मार्ग खोजने के लिए समाज को बाध्य कर सके ताकि वास्तविकता से प्रस्फुटित उसकी चेतना निस्तार पा सके। बहुसंख्यक की उपेक्षा कर, व्यक्तिपरकता के आधार पर मानवता की संरचना करना और उसकी दुहाई देना न तो सार्वभौमिक सत्य है न सर्वकालिक। आज पूरी मानवता वर्गों में बंटी है,

किन्तु भविष्य में उसका विभाजन सम्भव न हो सकेगा । क्योंकि बहुल मानवजाति वर्गहीन समाज के लिए प्रयत्नशील है । आज की स्थिति में जब वर्गहीन समाज की प्राप्ति के लिए अल्प और बहुल का संघर्ष चल रहा है, "रेणु" ने अपने चित्रण में बहुल का ही पक्ष ग्रहण किया है और सामान्य जन की पीड़ा को देखा परखा है । उनके पात्र गरीब किसान, खेतिहर मजदूर आदि निम्नवर्गीय पात्र हैं जिन्हें मानवता का प्राथमिक और प्रधान अंग साबित करने के लिए वह निरन्तर प्रयासशील रहते हैं ।

समाज के निराश्रित, कमजोर और दु:खी जीवन की पीड़ा की गहराई, सूक्ष्मता और आत्मीयता से "रेणु" ने वर्णन किया है । उनकी रचना में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दमन-चक्र से उत्पन्न दुखी जिंदगियों की मर्माहत पीड़ा का वैविध्य संत्रस्त मानवता का यथार्थ प्रस्तुत करता है । सामान्य जन इस पूँजीवादी व्यवस्था के कारण अभाव-ग्रस्त है - रोटी का अभाव, रोजी का अभाव - सबसे जैसे एक साथ ही जूझने की कोशिश करता है यह निम्नवर्गीय समाज, पिछड़ा हुआ उपेक्षित बहुसंख्यक लोक-जीवन । "रेणु" को दुखी जीवन के प्रति सहानुभूति है, जैसी सहानुभूति अन्य बुर्जुआ यथार्थवादियों या आलोचनात्मक यथार्थवादियों के लेखकीय व्यक्तित्व में देखी गई है । यह एक विकास-परक और रचनात्मक तत्व है ।

प्रकृतिवादी यथार्थवादियों की भाँति "रेणु" ने मात्र यथार्थ का अतिरंजित चित्रण ही नहीं किया है । प्रकृतिवादी जहाँ समस्याओं से पलायन करना, नियति पर विश्वास करना, सभ्यता के प्रति एक ध्वंसात्मक दृष्टिकोण की प्रक्रिया अपनाना और आगे चलने की जगह पीछे चलकर अविकसित सभ्यता में लौट आना वांछित समझते हैं वहाँ "रेणु" की

रचना में परिवर्तन और सभ्यता को आगे ले जाने की एक आकांक्षा झलकती है । परिवर्तन के लिए उनमें ललक है, किन्तु अपने सिद्धान्तगत उलझाव के कारण वह कोई विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ है । उनकी रचनागत सामाजिक निष्ठा समस्त विकृतियों के प्रति क्षोभ और असन्तोष व्यक्त करती है जिसके परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में आलोचना का बड़ा ही कठोर और सशक्त प्रहार उद्वेलित होता है । यहाँ उनके रचनागत आलोचना कर्म के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है । स्वतंत्रता के बाद सरकारी व्यवस्था में पनपने वाले खोखलेपन और उसकी विकृतियों का चित्रण विशेष रूप से विक्षोभ, घृणा, असन्तोष आदि का भाव उत्पन्न करता है ।

"कानूनगो साहब मुस्कुराकर पार्टी वरकरों की ओर देखते है - आप लोग तो जनता के नेता है ··· देखिए, कितना झंझट का काम है मैं किसे सच मानूं । "जमीन वाले फर्जी बंटैयादार खड़ा कर रहे है । ··· जमीन बचाने के लिए वे हर तरह के कुकर्म कर सकते है । "मगर फर्जी बंटैयादारों की संख्या जोड़कर देखिए ··· बहुमत की फर्जी ··· ।" कानूनगो साहब बिच्छू की तरह डंक मारकर हँसते है, दुष्ट हँसी । (एकलव्य के नोट्स) यह है सरकारी व्यवस्था और सर्वे के नाम पर किये गए जालसाजी का उदाहरण ।

"पिछले दस साल से पुस्तकालय वाले सरकार से घर भाड़ा के नाम पर चालीस रुपये माहवार वसूलते है । कभी एक पैसा भी दिया है मुझे ? ··· चार-पाँच हजार रुपयों की बात है, खेल नहीं, कहाँ गए रुपये, कुछ हिसाब तो होना चाहिए ··· सरकारी रेडियो बिकू बाबू की सुहागरात में बजने के लिए गया, उसी रात खराब होकर उनके यहाँ पड़ा है बैटरी का पैसा सरकार से बराबर वसूला गया है ।" (एकलव्य के

नोट्स] यह है ग्राम-नेता और शिक्षा विभाग की मिली-जुली भ्रष्टाचार की दोस्ती ।

भाई-साहब मुँह से छुले हुए पान की जाफरानी पीक की गुड़-गुड़ाहट के साथ लानत-भरी आवाज निकली - "क्या तमाशा है।" फिर पीक थूककर चालू हो गये - "एज इफ वी आर लेबरर ··· तमाशा है ··· दिल्ली का ब्रेड कहाँ है ? बतलाइए । बटर, केक, चीज, कुछ भी तो नहीं, सिर्फ चूड़ा-चना-फरही ? बोरिंग रोड कृष्णापुरी या पाटलिपुत्र कालोनी की बात छोड़िए - यहीं, अभी, राजेन्द्रनगर में ही कंट्राक्टर, फलाने प्रसाद सिंह के एरिया में जो पैकेट गिराये गए हैं सबमें "ए-वन" चीजें - मतलब, ब्रेड-बटर-चीज, सब कुछ — और हमलोगों की छत पर सिर्फ ये "रॉटन" चबेने ? बोलिए इसका क्या जबाब है । एं ? ··· खुद, सरकारी रेडियो बोलता है कि "राजेन्द्र नगर इज एक पाश एरिया - आलीशान इलाका है राजेन्द्र नगर और वहाँ गिरायी जाती है ··· दिस इज शीयर पार्सियालिटी ··· नहीं तो और क्या ··· अरे साहब, खा गया, सब खा गया ··· " [ऋणजल धनजल] भाई साहब नीचे गए तो मेरे पास एक दूसरे सज्जन सरककर आ गये । नम्र और दबी हुई आवाज में [फुसफुसाहट में] उनकी शिकायत थी : "उधर प्लास्टिक के बड़े-बड़े "कैन" ··· हाँ, इतने बड़े कि उसमें करीब चार घड़े पानी तो जरूर ··· एकदम मिल्की व्हाइट कैन के मुँह पर टाइट किया हुआ जेड ब्लैक कैप ··· लवली ··· मैंने कल खुद अपनी आँखों से देखा है हेलिकॉप्टर से गाँधी मैदान में पानी पर "थ्याथ्य" गिराया गया, वहाँ से आर्मी का आदमी बटोरकर नाव पर लेकर वेस्ट पटना की ओर चले गये ··· मानता हूँ कि हम लोगों के एरिया में पीने के पानी की कमी नहीं है लेकिन कैन ··· ?"

{मृगजल धनजल} इस प्रकार उच्चवर्ग मध्यवर्ग - गाँव हो या शहर सारी सुविधा बटोर लेने के लिए जीभ लपलपा रहे हैं। ऐसे अनेक उदाहरणों को रखकर "रेणु" ने सम्पूर्ण समाज के घिनौनेपन का आलोचनात्मक चित्रण किया है।

बीसवीं शताब्दी में "आलोचनात्मक यथार्थवाद" का रूप जिन देशों की कृतियों में उभरा है वे वही देश हैं जो आज भी सामन्तवादी पूंजीवादी व्यवस्था से मुक्त नहीं हो सके हैं, एवं उनके अतिवादी स्वरूप का साक्षात्कार कर रहे हैं। "रेणु" ने वास्तविकता के प्रति ईमानदार तथा सत्य के प्रति आग्रहशील होकर अमानवीय व्यवस्थाओं की विद्रूपताओं से परिपूर्ण अपने परिवेश के वर्ग संघर्ष, शोषण, दु:ख-दैन्य, अनैतिकता, स्वार्थ, छल-कपट, दम्भ, भ्रष्टाचार, अज्ञान और अशिक्षा के बीच पनपते हुए अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का मखौल उड़ाया है।

यथार्थ-बोध की संवेदना ही वह तात्त्विक अन्तरचेतना है जो "रेणु" के चरित्रों को मानवीय भावनाओं से क्रियाशील कर सूक्ष्म सचेतनता और सप्राणता के आभ्यांतरिक रूप में ढाल देती है। चरित्र-विधान की जितनी सुगठित संरचना उनके चरित्रांकन की परिव्याप्ति में समाविष्ट हुई है, उतनी समकालीन साहित्य में विरल रीति से उपलब्ध हुई है। कथ्य वस्तु में उतना नहीं किन्तु चरित्र-निरूपण में सामाजिकता और इतिहास-सापेक्षता का विश्वास्त आग्रह उनके साहित्य में विद्यमान है। वे पात्रों की निजता में वर्गीय और सामाजिक चरित्र को उभारते हैं जो एकत्व संगठन और नैरन्तर्य के चलते कहीं भी बिखराव की स्थिति में नहीं आ पाते और इतना आसानी से पहचान में आ जाते हैं कि व्यक्ति, समाज, परिवेश और इतिहास के बीच कहीं अलगाव नहीं दिखलाई देता।

"आलोचनात्मक यथार्थ" के सिलसिले में यह भी कहा जाता है कि इसने अपने साहित्य में महाकाव्यात्मक औदात्य दृष्टिकोण तथा चरित्र के जरिए अपना ऐसा प्रभाव बनाया है कि उसकी रचनाओं को बिलकुल नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। "रेणु" ने परिवेश और इतिहास से जुड़े हुए एक बड़े आयाम को अपने चित्रण का केन्द्र बिन्दु बनाया है जिसमें उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय जीवन के अनेक सारगर्भित प्रसंग समाविष्ट हो गये है और समग्र भारतीय जीवन के प्रतिनिधि का संग्रह तैयार हो गया है। जहाँ तक महाकाव्यात्मक औदात्य का प्रश्न है, "रेणु" का साहित्य-चित्रण और चरित्रांकन के माध्यम से अपनी सार्थकता की मांग अवश्यमेव पूरी करता है।

"रेणु" की मान्यताओं के पर्यवेक्षण में उनके रचनात्मक साहित्य के विश्लेषण से वह यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद की कसौटी पर खरा उतरता है। किन्तु इन विशेषताओं और उपलब्धियों के बावजूद उनका साहित्य अभावों की व्याप्ति से परे नहीं है। प्रेमचन्द जब बीसवीं शती के अपने समकालीन ज्ञानानुभव, यथार्थबोध, सम्प्रेषण, सिद्धान्त, रचना और संवेदन को आत्मसात कर गोर्की इत्यादि की भांति विश्व के एक महत् रचनाकार के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करते है, उस समय प्रेमचन्द के परवर्ती होते हुए भी "रेणु" अपने को उन्नीसवीं शती के बाल्ज़क, टाल्सटाय की भांति आलोचनात्मक यथार्थवाद तक ही अपने यथार्थबोध, रचना संवेदन को विस्तृत कर पाते हैं। बीसवीं शती के अपने समकालीन इतिहास और परिवेश को पहचान कर भी वह मान्यताओं के मामले में एक अध्याय पूर्व तक ही अपने को सीमित रखते है।

यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, वैज्ञानिक विकल्पवादी यथार्थवाद और क्रान्तिकारी यथार्थवाद - हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद के इन चार अध्यायों से जुड़ने वाले लेखकों की नितान्त कमी तो नहीं ही रही है। जीवन, सिद्धांत, रचना और संवेदन - लेखन के इन चार आसंगों के परिपेक्ष्य में यथार्थवादी लेखक अपने को केवल संवेदन के स्तर पर ही यथार्थ से जोड़ पाता है। उसका जीवन सिद्धांत और रचना - तीनों इस स्थिति से अलग ही नहीं रहते वरन् विपरीत भी होते हैं। इसकी तुलना में क्रमशः आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक रचना और संवेदन - दो स्तर पर, समाजवादी यथार्थवादी लेखक सिद्धांत, रचना और संवेदन - तीन स्तरों पर और क्रान्तिकारी यथार्थवादी लेखक जीवन, सिद्धांत, रचना और संवेदन - चार स्तरों पर यथार्थ से अपने को जोड़ता है। यथार्थवाद के ये चार अध्याय अलग-अलग नहीं हैं, वस्तुतः ये यथार्थवाद के संदर्भ में किये गये वैज्ञानिक चिन्तन के क्रमिक विकास के चार चरण हैं जो परस्पर एक दूसरे का निषेध करते हुए भी एक दूसरे के विकासपरक रचनात्मक तत्वों को स्वीकार करते हुए वैज्ञानिक चिंतन को गतिमान कर उसे सार्वकालिक और सार्वभौमिक बना सके हैं।

उपरोक्त वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए "रेणु" के साहित्य की सीमाओं के मूल्यांकन के लिए निश्चित रूप से हमें उन विन्दुओं की जाँच-पड़ताल करनी होगी जो लेखक के साहित्य-कर्म को प्रभावित करता है।

कोई भी साहित्यिक कृति या किसी साहित्यकार का सम्पूर्ण रचना कर्म तीन बातों से प्रभावित होता है - साहित्यकार का व्यक्तिगत जीवन, उसके विचार और उस युग की सामाजिक आर्थिक वैचारिक स्थितियाँ।

इसलिए रेणु अगर प्रेमचन्द न हो सके तो इसका एक कारण यह है कि रेणु कभी अपने जीवन को मध्यवर्ग के संस्कारों से मुक्त करके निम्नवर्ग से नहीं जोड़ सके । उनके निजी जीवन की आकांक्षाएं, अभिलाषाएं और कार्य-व्यापार पूंजीवादी, सामन्तवादी संस्कारों से ग्रसित था । इस कारण भी यथार्थबोध और उनके चित्रण की अपार क्षमता होते हुए भी उसका साहित्य कभी वह भूमिका नहीं निभा सका जो उससे उम्मीद की जाती थी ।

इसके अतिरिक्त, कोई भी साहित्यकार अपनी कृतियों में जिस सामाजिक निष्कर्ष पर पहुंचता है वह अनिवार्य रूप से उसकी ही नहीं बल्कि उसके युग की भी सीमा होता है । स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय पूंजीपती वर्ग, मध्यवर्ग और उनके नेतृत्व में चलने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिणाम, तथा स्वतन्त्र्योत्तर भारत में भारत की राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों ने भी अवश्य ही इनको प्रभावित किया है ।

स्वतंत्रता आन्दोलन जो हिन्दुस्तान की आम जनता अपने आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ती है और जीत तक पहुंच जाती है, उस समय देशी पूंजीपति और उसका पिछलग्गू मध्यवर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता कर लेता है, जिसके कारण लड़ने वाली जनता के हिस्से में आती है भूख, लाचारी और गरीबी । मध्यवर्ग जो समाज का वक्ता होता है वह केवल इन बेहाली का द्रष्टा बनकर रह जाता है । और परिणाम स्वरूप सामने आता है हमारा आज का यह समाज ।

आज जो हमारा समाज है जो पूंजीवादी व्यवस्था है उसने मनुष्य को टुकड़े टुकड़े में बाँट दिया है। हम आज के मनुष्य समाज से सम्पूर्ण समन्वित दृष्टिकोण की मांग नहीं कर सकते। आज के साहित्यकार में प्रेमचन्द बनने की सम्भावना कम होती जा रही है। फिर भी एक व्यक्ति के स्तर पर तो वह व्यवस्था के इस जाल के बावजूद 'मुक्तिबोध' हो ही सकता है। किन्तु इसके लिए चाहिए एक वैज्ञानिक सामाजिक चिन्तन।

आज के साहित्यकार से क्या मांग की जाती है यही कि वह चीजों को, घटनाओं को, परिस्थितियों को इस तरह रख दे कि सब कुछ साफ-साफ दिखने लगे, न केवल घटनाएं वरण उसके पीछे का कारण भी। किन्तु यह दृष्टि आँखों की रोशनी से नहीं, जीवन के प्रति हमारे सोचने, समझने के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है।

"रेणु" ने अपनी कृतियों में अत्यन्त मानवीय संवेदना के साथ लोक जीवन की उन विशेषताओं और विसंगतियों को देखा है, जहाँ मुट्ठी भर अनाज के अभाव में लोग कीड़ों की तरह मर रहे है। जबकि दूसरी ओर लोगों के पास अनाज की कमी नहीं।

अपने रिपोर्ताजों में "रेणु" व्यवस्था के खिलाफ खड़े होते है, उस व्यवस्था के खिलाफ जो आज मानवता के खिलाफ खड़ी है। अपने रिपोर्ताजों में रेणु राजनीतिक पार्टीयों और उसके कार्यकर्ताओं की छान-बीन नहीं करते किन्तु राजसत्ता और उसके अपने कटहरे में आ खड़े होते है। किन्तु इसी वर्णन के क्रम में रेणु पर भी प्रश्नचिन्ह खड़ा हो उठता है। रेणु बड़े ही तटस्थ भाव से सूखे का वर्णन करते है। यह कैसे सम्भव

है कि भूख से बिलबिलाते लोगों का वर्णन कोई तटस्थ भाव से करे जैसे मेले का वर्णन कर रहा हो । जो इल्जाम वे नेताओं पर लगाते हैं वो स्वयं उनपर भी लग जाता है — "सूखा न हो जैसे छत्तर का मेला" ।

नेपाली क्रान्ति असफल हो जाती है । इतने बलिदानों के बाद उनके नेता समझौता कर लेते हैं । और रेणु की कलम वहाँ मौन रह जाती है । उनका मौन असहमति जरूर जता जाता है, किन्तु क्या इतने से ही लेखक का दायित्व पूरा हो जाता है । ऐसे अनेक अन्तरविरोध "रेणु" के साहित्य में है ।

किन्तु इन सीमाओं के बावजूद "रेणु" का साहित्य प्रगतिशील साहित्य है । अपने सामाजिक परिस्थिति और वैज्ञानिक चिन्तन के अभाव के बावजूद उन्होंने जो साहित्य रचा उसमें यथार्थबोध और चित्रण की अद्भुत क्षमता है । जो श्रेष्ठ साहित्य की पहली माँग है ।

.....

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थ सूची

1.	मृणजल धनजल	फणीश्वरनाथ "रेणु" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977.
2.	नेपाली क्रान्ति-कथा	फणीश्वरनाथ "रेणु" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977.
3.	श्रुत अश्रुत पूर्व	फणीश्वरनाथ "रेणु" संकलन एवं सम्पादन : भारत यायावर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984.
4.	वन तुलसी की गन्ध	फणीश्वरनाथ "रेणु" संकलन एवं सम्पादन : भारत यायावर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	साहित्य के रूप और तत्व	श्री शिवनंदन प्रसाद.
2.	समीक्षा शास्त्र	डा. दशरथ ओझा.

3.	साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचन्द
4.	रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ	सम्पादक : कमलेश्वर
5.	नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र	मुक्तिबोध
6.	नयी कविता का आत्म संघर्ष मुक्तिबोध रचनावली भाग-5.	मुक्तिबोध सम्पादक : नेमिचन्द्र जैन
7.	आलोचना	पूर्णांक - 24

सहायक ग्रन्थ सूची

1.	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (सोलह भागों में) चतुर्दश भाग - अद्यतन काल	डा. कैलाशचंद भाटिया डा. रवीन्द्र भ्रमर
2.	हिन्दी साहित्य	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3.	साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण	डा. ज्ञा.का. गायकवाड
4.	हिन्दी कथा साहित्य : विविध संदर्भ	कृष्णा रैणा
5.	हिन्दी रेखाचित्र	डा. हरवंशलाल शर्मा
6.	काव्य के रूप	बाबू गुलाब राय

7.	विराम-चिन्ह	डा. रामविलास शर्मा
8.	आस्था और सौन्दर्य	डा. रामविलास शर्मा
9.	सोने की कलमवाला हीरामन फणीश्वरनाथ रेणु	राबिन शॉ पुष्प
10.	फणीश्वरनाथ रेणु	सुरेन्द्र चौधरी
11.	रेणु : कृतित्व और कृतियाँ	सम्पादक : डा. सियाराम तिवारी
12.	रेणु संस्मरण और श्रद्धांजलि	सम्पादक : प्रो रामबुझावन सिंह डा. रामवचन राय
13.	रेणु से भेंट - फणीश्वरनाथ रेणु से भेंटकर्ताओं का संकलन	सम्पादक : भारत यायावर
14.	फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य	अंजली तिवारी
15.	रेणु का रचना संसार	सम्पादक : विजय
16.	एकांकी के दृश्य	सम्पादक : भारत यायावर
17.	गंगा रेणु : विशेष खण्ड	मार्च, अप्रैल, मई 1988.

.....